टूटी हुई बिखरी हु

शमशेर बहादुर सिंह की चुनी हुई कविता

सम्पादक

अशोक वाजपेयी

टूटी हुई, बिखरी हुई

(शमशेर बहादुर सिंह की चुनी हुई कविताएँ)

वागर्थ, भारत भवन भोपाल के सहयोग

टूटी हुई, बिखरी हु

(चुनी हुई कविताएँ)

शमशेर बहादुर सिंह

सम्पादक

अशोक वाजपेयी

ISBN 81-7119 013 8

प्रथम संस्करण : 1990

मूल्य : 75.00

प्रकाशक

राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०
2/38, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

मुद्रक
तरुण प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण
हरचन्दन सिंह भट्टी (रूपकर भारत भवन भ

पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता

हम बहुत सारी आवाज़ों के अभ्यस्त हैं। उनका लगभग कनफोड़ घमासान मचा हुआ है। साहित्य की दुनिया में ही जाने क्यों और कैसे ग़मगुसार होने के बजाय ज्यादातर दोस्त नासेह बन बैठे हैं। हमें रोज बता रहे हैं कि हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं। इस 'कलह कोलाहल तुमुल' में जब कभी कुछ शान्ति हो जाती है तो हृदय की बात की तरह एक काँपती आवाज सुनाई देती है, शमशेर की। पिछले दिनों जब एक क्रम से हिन्दी में तरह-तरह के लेखकों की पचहत्तरवीं या सत्तरवीं वर्षगाँठ मनायी गयी, तो किसी को याद नहीं आया कि शमशेर भी पचहत्तर के हो चुके। किसी को ख़याल नहीं आया कि नयी कविता का वह पहला नागरिक, बूढ़ा और बीमार गुजरात के एक कोने में अभी भी है। यह आकस्मिक नहीं है। शमशेर में, उनकी कविता में कुछ और साधना मुश्किल है। टूटी हुई और बिखरी हुई होने के बावजूद वह ऐसी कविता है जिसका आप किसी अन्य अभिप्राय के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकते। वह अपने आत्यन्तिक अर्थ में परम नैतिक कविता है, प्रार्थना की तरह पवित्र और उसका दूसरों को पीटने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

शमशेर के यहाँ कविता मनुष्य से सबसे अनश्वर रचना है : वह समयविद्ध होते हुए भी समयातीत है। न तो इतिहास के सबसे दयनीय शिकार तानाशाह कविता लिख सकते हैं और न ही विचारधारा की जुगाली करते गम्भीर उपदेष्टा ही। ऐतिहासिक राजनीति को परास्त करती हुई कविता भाषा की कालातीत राजनीति है। शमशेर कालातीत के कवि हैं, उनकी काँपती-सी आवाज़ हमारी दुनिया की ऐसी सिम्तें दिखाती है जिनके होने का पता जैसे पहली बार उससे ही चलता है पर जिन्हें जाने बिना हमारी दुनिया अधूरी और अधसमझी ही रह जाती। उनकी दुनिया 'टूटी हुई, बिखरी हुई' है, पर अपनी सुन्दरता और अर्थमयता में मुकम्मल। उसमें टूटे-बिखरे हुए-से ही अपनी सजग, पर सहज, संयमित, पर तनाव-भरी मानवीयता सहेजने और हम तक पहुँचाने की संकोच और सन्देह-भरी चेष्टा है उसमें होने का हमारे समय में मनुष्य होने के और

रहस्य का अर्थ और विचार का अद्वितीय संगुम्फन है। उनकी दुनिया निराली जानी-पहचानी दुनिया में रगड़ खाती दुनिया है, पर ऐसी संरचना भी, जिसे हम शमशेर के बनाये बिना कभी न देख पाते। लगभग आधी सदी से शमशेर अपने ही ढंग की कविता-ज़िद पर, संकोच से, लेकिन अड़े रहे हैं। उन्होंने इस तरह जो जगह बनायी है, वह धड़कती और रोशन है। अलग, पर, 'इतने पास अपने' वह इतिहास में है और सच्ची आत्मविश्वस्त कविता द्वारा किया गया इतिहास का अतिक्रमण भी।

शमशेर बहादुर सिंह की गणना पिछले पचास वर्षों के हिन्दी कविता के शीर्षस्थानीय कवियों में सादर की जाती है। वे उन पहले कवियों में रहे हैं जिन्होंने हिन्दी कविता को नये प्रयोग करने की साहसिकता प्रदान की। छायावाद और छायावादोत्तर कवियों के जीवनधर्मी संस्कारों को आत्मसात् करते हुए शमशेर ने हिन्दी कविता को संवेदनात्मक जटिलताओं, समकालीन संघर्षों और आधुनिकता के बढ़ते दबावों से जूझने के लिए निर्भय खुलापन और सच्ची प्रयोग-शीलता देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पचास वर्षों की अवधि में फैली हुई उनकी कविता की दुनिया एक ऐसी दुनिया है, जो अद्वितीय और निराली है पर जिसे जाने-पहचाने बिना हिन्दी की जातीय चेतना के अन्तःसंघर्ष और परिष्कार को समझा ही नहीं जा सकता।

उनकी आवाज़ में सच्चापन और खरापन इसलिए भी है कि वह एक ऐसे कवि की आवाज़ है, जिसने अनेक भौतिक कष्ट और यंत्रणाएँ सहकर, व्यापक उपेक्षा की परवाह किये बिना, उस आवाज़ को दबने नहीं दिया, न ही शोरगुल में शामिल होने दिया। उसमें गहरी समकालीनता के साथ-ही-साथ क्लासिकी स्मृति और हमारी सामासिक परम्परा की अद्भुत और अनिवार्य अन्तर्ध्वनियाँ हैं। शमशेर की आवाज़ हमें ठेलती या दुलराती नहीं है। वह हमें घेरती है, दूर तक ले जाती है। वह हमें उस सबकी याद दिलाती है, जो हमारा सहज उत्तरा-धिकार है, पर जो हमारी चेतना से ओझल होता जाता है। वह चित्र बनाती है, स्थापत्य गढ़ती है, संगीत रचती है, पर प्रथमतः और अन्ततः कविता की आवाज़ है। शायद इस शताब्दी में कोई और हिन्दी कवि नहीं है जिसकी रचना-प्रक्रिया में दूसरे कलामाध्यमों ने ऐसी समृद्धिकारी भूमिका निभायी हो, जैसी शमशेर के यहाँ। बिना मूर्ति गढ़े शमशेर मूर्तिकार हैं, बिना चित्र बनाये चित्र-कार और बिना गाये संगीतकार। उनके यहाँ कविता, लगभग ज़िद करके अपना स्वरूप बचाते हुए भी सिर्फ़ कहती नहीं, गढ़ती, रचती और गाती है। उनकी भाषा इसलिए सिर्फ़ शब्दसीमित भाषा नहीं है, उसमें अन्य कलाभाषाएँ भी अन्त:-सलिल हैं।

वस्तु, भाषा और संवेदना के अन्तराल को तिरोहित करती हुई जीवन और

कला को एकात्म करती हुई शमशेर की कविता समग्र कविता है। एक ऐसे समय में, जब चारों ओर कविता के अन्यथा शोषण के लिए बड़ी उतावली है, शमशेर की कविता हिन्दी कविता के स्वाभिमान और निर्भयता की अकम्प आवाज़ है। इस अर्थ में भी वे 'कवियों के कवि' हैं। उर्दू और हिन्दी की काव्य-परम्पराओं को नये उन्मेष के साथ एक बिन्दु पर लाकर दोनों को समन्वित करने का उन्होंने ऐतिहासिक कार्य किया है। उनकी कविता उदग्र या उग्र नहीं है। उनमें मग्न सुषमा है पर उसके पीछे गहरा जीवन-संघर्ष और अचूक आत्मान्वेषण है, उनके काव्य में विस्तार का असाधारण उत्कर्ष उनकी कविता के सौन्दर्य की एक शर्त है।

शब्द के कर्म और मर्म को अधीर त्वरा के साथ पकड़ने और पहचाननेवाले अद्वितीय कवि शमशेर के यहाँ अन्दर पछाड़ खाता हुआ समुद्र है, तो बाहर प्रशान्त नीला दरिया। उनकी अनुभूतियों में आदिम ऊर्जा है, तो उनके शब्द-कौशल में अत्यन्त आधुनिक परिष्कार। अन्ततः शमशेर की कविता के केन्द्र में है आदमी, दो कुहनियों से पहाड़ों को ठेलता हुआ, पतझड़ के ज़रा अटके हुए पत्ते-सा, ताक पर अपने हिस्से की धरी होने पर बड़ी रात गये काम से लौटने पर [illegible] करता हुआ, होली के भय, दीवाली और ईद-मुहर्रम के एक ही भाँति के आतंक से त्रस्त, अन्तिम लोरियों के बजाय अँधेरे की तलवारों से जूझता हुआ, गंगा में कीचड़ की तरह सोता हुआ, बीती हुई अनहोनी और होनी की उदास रंगीनियों में फकत उलझा हुआ, शब्द के परिष्कार को स्वयं दिशा मानता हुआ, हृदय की सच्ची सुख-शान्ति का बहुत आदिम, बहुत अभिनव राग गाता हुआ आदमी। शमशेर की कविता हमारे वक्त का जतन से सहेज कर रखा गया [illegible] आईना है वह आदमीनामा, जो व्यथा और हर्ष के साथ अनेक जीवन छवियों को लेकर अनेक रंगतों में लिखा गया है।

हाल ही में शमशेर जी को मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित भारतीय कविता के राष्ट्रीय पुरस्कार कबीर सम्मान देने की घोषणा की गयी है। वे यह सम्मान पानेवाले पहले कवि हैं और इसका सर्वसम्मत निश्चय करनेवाली जूरी में कन्नड़ कथाकार आलोचक डा० यू० आर० अनन्तमूर्ति, बँगला कवि-आलोचक शंख घोष, पंजाबी कवि-आलोचक डा० हरभजन सिंह, हिन्दी कवि-कथाकार कुँवर नारायण, उर्दू आलोचक शमसुर्रहमान फ़ारूकी, अंग्रेज़ी कवि जयन्त महापात्र, चित्रकार कृष्ण खन्ना, हिन्दी कवि-आलोचक विष्णु खरे शामिल थे। एक तरह से यह सम्मान शमशेर जी को समकालीन भारतीय काव्यपरिदृश्य में एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में पहला सार्वजनिक स्वीकार है।

इस शुभ अवसर पर शमशेर जी के समूचे काव्यकृतित्व में से चुनकर लगभग इक्यावन कविताएँ यहाँ इस चयन में प्रकाशित हैं। चुनाव का मुख्य आधार [illegible]

मिलाकर हमारी रुचि ही है : हम पिछले लगभग तीस वर्षों से शमशेर जी की कविता के अथक और लगभग निर्लज्ज प्रशंसक रहे हैं। हमारी काव्य-रुचि के निर्माण में शमशेरजी की कविता का बड़ा हाथ रहा है। लेकिन उम्मीद है कि इस चयन मे उनकी कविता की दुनिया का विस्तार, उसकी गहनता और उनके सरोकारों के बदलते रूप और उनकी बुनियादी अतिजीविता भी जाहिर हो सकेगी। हमें विश्वास है कि आज हिन्दी कविता के संस्कार और मुहावरे, उनकी सुरुचि और दृष्टि के पीछे शमशेर जैसे पितृपुरुष की सक्रिय उपस्थिति महत्त्व-पूर्ण उत्प्रेरक रही है।

—अशोक वाजपेयी

भारत भवन, भोपाल
11 दिसंबर, 1989

क्रम

उषा

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका
[अभी गीला पड़ा है]

बहुत काली सिल ज़रा-से लाल केसर से
कि जैसे धुल गयी हो

स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने

नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।

और...
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।

एक पीली शाम

एक पीली शाम
        पतझर का ज़रा अटका हुआ पत्ता
शान्त
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
        (कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं ?)

        वासना डूबी
        शिथिल पल में
        स्नेह काजल में
        लिये अद्भुत रूप-कोमलता

अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सान्ध्य तारक-सा
        अतल में ।

रात्रि

1

मैं मींच कर आँखें
कि जैसे क्षितिज
तुमको खोजता हूँ।

2

ओ हमारे साँस के सूर्य !
साँस की गंगा
अनवरत बह रही है।
तुम कहाँ डूबे हुए हो ?

एक नीला आइना बेठोस

एक नीला आइना
बेठोस-सी यह चाँदनी
और अन्दर चल रहा हूँ मैं
उसी के महातल के मौन में।
मौन में इतिहास का
कन किरन जीवित, एक, बस।

एक पल के ओट में है कुल जहान।

आत्मा है
अखिल की हठ-सी।

चाँदनी में घुल गये हैं
बहुत-से तारे बहुत कुछ
घुल गया हूँ मैं
बहुत कुछ अब।
रह गया सा एक सीधा बिंब
चल रहा है जो
शान्त इंगित-सा
न जाने किधर।

पूर्णिमा का चाँद

चाँद निकला बादलों से पूर्णिमा का।

गल रहा है आसमान।

एक दरिया उमड़ कर पीले गुलाबों का

चूमता है बादलों के झिलमिलाते

स्वप्न जैसे पाँव।

कमरे में आया

कमरे में आया
शाम का कोमल अँधियाला :

दीवारों पर, छत पर—चुप-चुप
कुहरे-सा काला कुछ
उदास-मन छाया।

मेरे सूने घर में
धीरे-धीरे डूबा
उसका मन।

मैं भी कहाँ कौन जाने कब
बैठा उस तम की मिट्टी में
उसके संग समाया।

लेकर सीधा नारा

लेकर सीधा नारा
कौन पुकारा
अन्तिम आशाओं की संध्याओं से ?

पलकें डूबी ही सी थीं—
पर अभी नहीं;
कोई सुनता सा था मुझे
कहीं;
फिर किसने यह, सातों सागर के पार
एकाकीपन से ही, मानो—हार,
एकाकी उठ मुझे पुकारा
कई बार ?

मैं समाज तो नहीं; न मैं कुल
जीवन;
कण-समूह में हूँ मैं केवल
एक कण।
—कौन सहारा !
मेरा कौन सहारा !

बँधा होता भी

बँधा होता भी
मौन यदि
उस व्यथा के रूप से कोमल

जो कि तुम हो

समय पा लेता
उसे तब भी।

चिकनी चाँदी-सी माटी

चिकनी चाँदी-सी माटी
वह देह धूप में गीली
लेटी है हँसती-सी।

सूना-सूना पथ है, उदास झरना

सूना-सूना पथ है, उदास झरना
एक धुँधली बादल-रेखा पर टिका हुआ
आसमान
जहाँ वह काली युवती
हँसी थी ।

हमारे सिवा इनका रस कौन जाने !

वो अपनों की बातें, वो अपनों की ख़ू—बू
हमारी ही हिन्दी, हमारी ही उर्दू !

ये कोयल-ओ-बुलबुल के मीठे तराने :
हमारे सिवा इनका रस कौन जाने !

साथ, सम, शान्त

साथ, सम, शान्त;
स्वप्न-सी, सुन्दर;
सिर्फ़ दो ममियाँ।

कहाँ जगतीतल ?
कहाँ नभ अमल ?
कल ? आज ? कल ?

नायकता की दो भवें
मिलीं; दो पलकें पीली;
स्थिर, सोईं।

वीतराग जीवन में गहरी
भूलों की
अधर-पंखुड़ियों-सी,
मौन, सुप्त।

सिर्फ़ दो ममियाँ।
हम, तुम।

स्थिर है शव-सी वात

स्थिर है शव-सी वात।
लटका है पश्चिम के घर में
आधा चाँद कटोरा काँसे का-सा।
सीसे की-सी नीली रात।

वह स्वप्नों की ओट
निश्चल आँखें देख रही हैं।
ठिठुरे काले पेड़ खड़े हैं मिल कर।
सूख रहे हैं मेरे होंट।

नत जीवन का भाल।
प्रेम पड़ा है ठंडा मानव-उर का।
निद्रा तम के शून्य शिविर में
अंधा पंगु बँधा है काल।

सहन्-सहन् बहता है वायु

सहन् सहन् बहता है वायु
मुक्त उसासों का स्वर भर।
सम्हल-सम्हल कर झुकती डाल :
आकुल-उर तरु का मर्मर।

रह जाते हैं सिहर-सिहर
मृदु कलिका के विस्मित गात,
बहका फिरता मधुप अधीर,
तितली अस्थिर-गति अवदात।

पागल-सा हो उठता वात।
अलसित जगती अनयन धूल।
किसकी छाया स्वप्निल श्वेत
हेर रही है क्षितिज-दुकूल ?

कोई अपने सुख-दुख भूल
सूने पथ पर राग-विहीन
विस्मृति के बिखराता फूल
फिर आया है मूक-मलीन !

सींग और नाख़ून

सींग और नाख़ून
लोहे के बक्तर कन्धों पर।

सीने में सूराख़ हड्डी का।
        आँखों में : घास-काई की नमी।

एक मुर्दा हाथ
        पाँव पर टिका
                उलटी क़लम थामे।

तीन तसलों में कमर का घाव सड़ चुका है।

जड़ों का भी कड़ा जाल
                हो चुका पत्थर।

शिला का खून पीती थी

शिला का ख़ून पीती थी
वह जड़
जो कि पत्थर थी स्वयं।

सीढ़ियाँ थीं बादलों की झूलतीं,
टहनियों-सी।

और वह पक्का चबूतरा,
ढाल में चिकना :
सुतल था
आत्मा के कल्पतरु का ?

दूब

मोटी, धुली लॉन की दूब,
साफ़ मखमल की क़ालीन।
ठंडी धुली सुनहरी धूप।

हलकी मीठी चा-सा दिन,
मीठी चुस्की-सी बातें,
मुलायम बाँहों-सा अपनाव।

पलकों पर हौले-हौले
तुम्हारे फूल-से पाँव
मानो भूल कर पड़ते
हृदय के सपनों पर मेरे !

अकेला हूँ, आओ !

छिप गया वह मुख

छिप गया वह मुख
ढँक लिया जल आँचलों ने बादलों के
(आज काजल रात-भर बरसा करेगा क्या ?)

नम गयी पृथ्वी बिछा कर फूल के सुख
सीप सी रंगीन लहरों के हृदय में, डोल
चमकीले पलों में,
हास्य के अनमोल मोती, रोल
तट की रेत, अपने आप कैसे टूटते हैं :
बुलबुलों में, सहज-इंगित मुद्रिकाओं के नगीने
भाव-अनुरंजित; न जाने सहज कैसे
हवा के उन्मुक्त उर में फूटते हैं !
(मौन मानव। बोल को तरसा करेगा क्या ?)

रिक्त रक्तिम हृदय आँचल में समेटे
घिरा नारी मन उचाटों में,
भूल-धूमिल जाल मानस पर लपेटे
नागफन के धूल काँटों में :
खड़ी विजड़ित चरण...संध्या, मूल प्राणों की...
छाँह जीवन-वनकुसुम की, स्थिर।
(वास्तव को स्वप्न ही परसा करेगा क्या ?)

कठिन प्रस्तर में

कठिन प्रस्तर में अगिन सूराख़।
मौन पर्तों में हिला मैं कीट।
(ढीठ कितनी रीढ़ है तन की—
तनी है!)

आत्मा है भाव :
भाव-दीठ
झुक रही है
अगम अन्तर में
अनगिनत सूराख़-सी करती।

सुबह

जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर
सजग-सा होकर पसरने लगा
आप से आप।

अज्ञेय से

जो नहीं है
जैसे कि 'सुरुचि'
उसका ग़म क्या ?
वह नहीं है।

किससे लड़ना ?

रुचि तो है शान्ति,
स्थिरता,
काल-क्षण में
एक सौन्दर्य की
मौन अमरता।

अस्थिर क्यों होना
फिर ?

जो है
उसे ही क्यों न सँजोना ?
उसी के क्यों न होना ?—
जो कि है।

जो नहीं है
जैसे कि सुरुचि
उसका ग़म क्या ?
वह नहीं है।

रेडियो पर एक पाश्चात्य संगीत सुनकर

'करुणा' और 'एम० ए० सिद्दीक़ी' को समर्पित

[यह संगीत यों तो योरुपीय था, मगर जिस तरह उसका चित्र मेरी भावनाओं में उभरता गया, मुझे लगा कि जैसे किसी अरबी-रूमानी इतिहास के धीमे और [illegible] स्वप्न छूटते आवेश, मर्म में जलते उच्छ्वास और कभी दर्दनाक फ़रियादों के क्षण, कभी आँसुओं-भरे मौन को मूर्त कर रहे हैं। उसी संगीत से मिलती-जुलती शैली में उसी भावुक प्रभाव को शब्दों में बाँधने का यह कुछ प्रयास है।—श०]

मैं
सुनूँगा तेरी आवाज़
पैरती बर्फ़ की सतह में तीर-सी
शबनम की रातों में
तारों की टूटती
गर्म
गर्म
शमशीर-सी—
तेरी आवाज़
ख़्वाबों में घूमती-झूमती
आहों की एक तसवीर-सी
सुनूँगा : मेरी-तेरी है वह

खोई हुई
रोई हुई
एक तक़दीर-सी

परदों में——जल के——शांत
झिलमिल
झिलमिल
कमलदल।

रात की हँसी है तेरे गले में,
सीने में,
बहुत काली सुर्मयी पलकों में,
साँसों में, लहरीली अलकों में :
आयी तू, ओ किसकी !
फिर मुसकरायी तू
नींद में——ख़ामोश...वस्ल।

शुरू है आख़िरी पीर।...

सलाम !...
मेरे दर्द से हमकलाम
न हो !
जा, अब सो,
न रो।
तू मेरी बेबस बाँहों पर, सर रख कर, ओह,
न रो !

टूटी हुई बिखरा हुई

जो कुछ है
जो कुछ है
खो !
खो !
खो !
ओ शीरीं ! ओ लैला ! ओ हीर !
—जा !
—जा !
—जा !—सो !...

× ×

बेख़बर मैं,
बाख़बर आधी-सी रात।
बेख़बर सपने हैं।
बाख़बर है एक, बस, उसकी ज़ात !
तू मेरी !...
आमीन !
आमीन !
आमीन !

'निशा निमंत्रण' के कवि से

यह खँडहर की साँस
 तुम जिसे भर रहे हो वंशी में—
है तंग घुटी-सी सुबह
 लाल सफेद सियाह !

कठिन राग है जिसे
 तुम फिर-फिर भूल रहे हो, देखो—
जो तख़्ते से लिपटी है,
 यह मरने की वह ख़ुशी !

मत गाओ यह गीत !
 मैं बिखर पड़ूँगा पागलपन में।
ओ दूर अजान मुसाफ़िर,
 यह हँसी मरुस्थल की है !

का० रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली बर्षी पर

वह हँसी का फूल—
        ऊषा का हृदय
बस गया है याद में : मानो
अहर्निश्
साँस में एक सूर्योदय हो !

        जागता व्यक्तित्व !
        बोलता पाण्डित्य !

आज भारद्वाज के विश्वास की लाली
रक्त का स्पंदन—मधुरतर है।
                        प्रखरतर है।

×   ×

चढ़ रहा है दिन।

×   ×

धूल में हैं तीन रंग
गड़ा जिसपर मौन भारद्वाज का है—लाल निशान।

उसी की आभा गगन
पूर्व में लाता।

देखता है मौन अक्षयवट
क्रान्ति का इक वृहद् कुंभ :
क्रान्तिमय निर्माण का इक् वृहद् पर्व ;
चमकती असिधार-सी है धार गंगा की :
हरहराकर उठ रहा
नव
जनमहासागर।

चीन देश का नाम

[हाशिये पर दिये हुए चीनी संकेताक्षरों का अर्थ 'चीन देश का नाम है : 'चीनी जनता का जनतन्त्रात्मक गणतन्त्र राज्य।' चूँकि चीन मैत्रीभाव का आशय सम्मुख था। उसमें अंकित होकर इन अलग-अलग संकेताक्षरों के मूल अर्थों की भाव-भूमि पर इस स्वतन्त्र रूप में पल्लवित किया गया है।]

मैंने
क्षितिज के बीचोबीच
खिला हुआ देखा
कितना बड़ा फूल !

देख कर
गंभीर शपथ की एक
तलवार सीधी अपने सीने पर
रखी और प्रण लिया
कि :

वह आकाश की माँग का फूल
जब तक मैं चूम न लूँगा
चैन से न बैठूँगा।

और महान संदेश लिए
दौड़ता हुआ संदेशवाहक हो जैसे—
मै दौड़ा :

民

चार दिशाओं का आलोक
सिर पर धारे
पाँवों में उत्साह के पर औ'
अक्षुण्ण गति के तीर
बाँधे।

共

और पहुँच कर वहीं
अपने प्रेम की
बाँहों में बाँहें डाल दीं मैंने
और उस सीमा के ऊपर खड़े हुए
हम दोनों प्रसन्न थे।

अमर सौन्दर्य का
कोई इशारा सा
एक तीर—
दिशाओं की चौकोर दुनिया के बराबर
सन्तुलित
सधा हुआ—
निशाने पर
छूटने-छूटने को था।

× ×

(हमारा अन्तर
एक बहुत बड़ी विजय का
आलोक-चिह्न
है।)

गजानन मुक्तिबोध

ज़माने भर का कोई इस क़दर अपना न हो जाये
कि अपनी जिन्दगी ख़ुद आपको बेगाना हो जाये।

सहर होगी ये शब बीतेगी और ऐसी सहर होगी
कि बेहोशी हमारे होश का पैमाना हो जाये।

किरन फूटी है ज़ख्मों के लहू से : यह नया दिन है :
दिलों की रोशनी के फूल हैं - नज़राना हो जाये।

ग़रीबुद्दहर थे हम; उठ गये दुनिया से; अच्छा है...
हमारे नाम से रौशन अगर वीराना हो जाये।

बहुत खींचे तेरे मस्तों ने फ़ाक़े फिर भी हम खींचे
रियाज़त ख़त्म होती है अगर अफ़साना हो जाये।

चमन खिलता था वह खिलता था, और वह खिलना कैसा था
कि जैसे हर कली से दर्द का याराना हो जाये।

वह गहरे आसमानी रंग की चादर में लिपटा है
कफ़न सौ ज़ख्म फूलों में वही पर्दा न हो जाये।

इधर मैं हूँ उधर मैं हूँ, अजल, तू बीच में क्या है?
फ़क़त इक नाम है, यह नाम भी धोका न हो जाये।

× × ×

वो सरमस्तों की महफ़िल में गजानन मुक्तिबोध आया
सियासत जाहिदों की खन्दए-दीवाना हो जाये।

सारनाथ की एक शाम
[त्रिलोचन के लिए]

ये आकाश के सरगम
खनिज रंग हैं
बहुमूल्य अतीत हैं
या शायद भविष्य । 1 ।

तू किस
गहरे सागर के नीचे
के गहरे सागर
के नीचे का
गहरा सागर होकर
भिच गया है
अथाह शिला से · केवल
अनिद्य अवर्ण्य मछलियों के विद्युत
तुझे खनते हैं
अपने सुख के लिए । 2 ।

(सुख तो व्यंग्य में ही है
और कहाँ
युग दर्शन
मित्र
छल का अपना ही
छन्द है

सर्वोपरि मधुर मुक्त
और कितना एब्स्ट्रैक्ट
क्योंकि व्यभिचार ही आधुनिकतम
काव्य कला है   और   आज
आलोचना के डाक्टर
उसे अनादि भी कहते हैं) । 3 ।

शब्द का परिष्कार
स्वयं दिशा है
वही मेरी आत्मा हो
आधी दूर तक
तब भी
तू बहुत दूर है   बहुत आगे
त्रिलोचन । 4 ।

वह कोलाहल जो कोंपलों में भरा है
सुनकर
तू विक्षुब्ध हो-हो जाता
क्या उपनिषदों का शोर
उसे दबा पाता । 5 ।

वरुणा के किनारे एक चक्रस्तूप है
शायद वहीं विश्व का केन्द्र है
वहीं कहीं
ऐसा सुनते हैं । 6 ।

आधुनिकता   आधुनिकता
डूब रही है   महासागर में
किसी कोंपल के ओंठ पे
उभरी ओस के   महासागर में
डूब रही है
तो फिर क्षुब्ध क्यों है तू । 7 ।

× ×

तूने शताब्दियों
सानेट से मुक्त छन्द खन कर
संस्कृत वृत्तों में उन्हें बाँधा सहज हो लगभग
जैसे य' आकाश बँधे हुए हैं अपने
सरगम के अट्टहास में । 8 ।

ओ
शक्ति के साधक अर्थ के साधक
तू धरती को दोनों ओर से
थामे हुए और
आँख मीचे हुए ऐसे ही सूँघ रहा है उसे
जाने कब से । 9 ।

तुझे केवल मैं जानता हूँ । 10 ।

क्योंकि
मैं उसी धरती में लोट रहा हूँ उसकी
ऋतुओं की पलकों-सा बिछा हुआ मैं
उसकी ऊष्मा में
सुलग रहा हूँ
शान्ति के लिए । 11 ।

एक वासन्ती सोम झलक जो मेरे
अंक से छीन कर चाँद लुका लेता है
खींच ले जाती है प्राण मेरा
उस पर भी है तेरी दृष्टि । 12 ।

आन्तरिक एकान्त
वरुणा किनारे की वह पश्म-
ऊष्मा । 13 ।

सत्यमेव जयते

[भारत-चीन युद्ध सन् '62 के संदर्भ में लिखित कुछ पंक्तियाँ]

(1)

वह पहाड़ी नदी एक रायफ़ल की बाढ़ है
जिसके किनारे दलाई लामा खड़ा है

(2)

और अखिल सत्य के महादेव
दोनों पर करुणा से हँस रहे हैं

(3)

सत्य की ज़बान बन्द हो
फिर भी वह गरजता है
सत्य की कसी हुई मुट्ठियाँ सहसा
खुलती हैं
तो आँधियाँ आती हैं
जो अटामिक मोर्चों को भी आख़िरकार
उड़ा ले जाती हैं

(4)

यह धरती अपनी जिस कीली पर घूम रही है
वह
सत्य है

वह शक्ति के दुरभिमानियो का
रसातल नहीं

(5)

क्या शिवलोक के बीच कोई
विभाजक दीवार
खड़ी की जा सकती है
सिवाय सच्चाई की उज्ज्वलता के

(6)

शक्ति आकार में नहीं
सत्य में ही है।

मदर तेरेसा

माँ, तुम असली माँ हो
उनकी, जिन्होंने कभी नहीं जाना
माँ कैसी होती है।

शायद मृत्यु का देवता तुम्हारे चरणों पर
माथा टेकता है
और निवेदन करता है कि तुम
और तुम्हारे बच्चों को कम-से-कम कष्ट
और अधिक से अधिक जीवन की छूट दूँगा
जहाँ तक मेरे बस में है !

शायद उसे याद आता हो कि
मृत्यु और दिव्य अमर जीवन
दोनों को जिसने पैदा किया
तुम उसी का शुद्ध पूर्ण अंश हो,
अतः उसकी भी माता हो !

मणिपुरी काव्य साहित्य की एक विहंगम नन्हीं-सी झाँकी [एक प्रयोग]

निवेदन

चार-पाँच साल हुए, मणिपुरी साहित्य समिति के एक प्रचार पैम्फलेट ने मुझे कौतुकवश आकृष्ट किया। उसी से अकस्मात् प्रस्तुत प्रयोग के लिए प्रेरणा मिली। मेरे मन में सवाल उठा—क्या किसी नितान्त अपरिचित भाषा के संज्ञा-पदों को इस प्रकार मुक्त पदों में नहीं बाँधा जा सकता कि वे अपने ध्वन्यात्मक आकर्षण के साथ हमारे कानों में गूँजने लगें—और, सम्भवतः फलस्वरूप, हम उनके मूल सन्दर्भों को जानने के लिए थोड़े-बहुत उत्सुक हो उठें ? मेरी सृजनात्मक कुल-बुलाहट ने जवाब दिया : बेशक बाँधा जा सकता है : कोशिश कर देखते हैं। अस्तु यह प्रयोग। बहुत से श्रोताओं ने, जिनमें दो अहिन्दीभाषी भाषा वैज्ञानिक भी शामिल हैं, इसे काफी दिलचस्प पाया। अतः 'पूर्वग्रह' के पाठकों के समक्ष भी इसे प्रस्तुत करने की इच्छा हुई। (मेरी दो-तीन बड़ी और नयी कविताओं में यह भी एक है।)

मणिपुरी नाट्यमच के जाने-माने कलाकार श्री सिंहजीत सिंह ने सौजन्य-पूर्वक दो-तीन नाम संज्ञाओं में आवश्यक संशोधन का सुझाव दिया, जिसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। नीचे दिए संक्षिप्त नोट्स उनसे हुई बातचीत का प्रतिफल है :

लिपि	प्राचीन और ऐतिहासिक दस्तावेज आदि इसी लिपि में अंकित होते आए। प्रदेश की जन-चेतना में यही सरकारी लिपि है।

हिजन हिराओ — इस [illegible] में नौका के प्रतीक माध्यम से प्राचीन धर्म दर्शन व्याख्यायित हुआ। अतः अन्तरण का भाव आध्यात्मिक भी है। कथा के अन्त में नौका [illegible] हो जाती है। केन्द्रीय विषयवस्तु : किसने यह नौका बनाई, क्यों बनाई, कैसे बनाई।

नांङ् पोक् लिङ् थो — नायक शिव देवता से मिलता-जुलता है। आसन, बैल। सर्पों की माला, आदि।

कुछ नितान्त अजनबी किन्तु आकर्षक शब्दों के साथ उच्चारण—सुख के लिए ये कुलपाद लिखे गए।

॥ लिपि ॥

म हा रा जा
"**खोङ् तेक् चा**"
7 9 9
ई स्वी :—

म णि पु री
ता म्र प त्र।
और उसी लिपि में——
"**चै था रोल कुम् बा** व ;"

आ ज भी
सु र क्षि त है

आ ज **भी**
रा ज वं श इ ति हा स
वि व र ण के
ले ख न में

आ ज भी प्र—
यो जि त। व ह लि पि।
अ न्त रंग—

रूप से आज भी प्रयुक्त

महाराजा "खोङ् तेक् चा"
के युग से।—799
ई०। आज तक!

॥ औग्–री सूर्य स्तुति ॥

आज तक
"नोङ्-बा लाइरेन्.."
आज तक
"नोङ्-दा लाइरेन
पाखंङ्-बा"

की याद
मणिपुरियों के
मन-मस्तिष्क में
ह री है
आज तक।

राजतिलकों पर
"औग्-री"
सूर्यदेव स्तुति की
प्रस्तुति
की वह
दीर्घ
परम्परा
जीवित
है।
आज तक
मणिपुरी जन
—जन-जन का—

टूटी हुई, बिखरी हुई /

मा नो
रा ज ति ल क ही
"औ ग्-री"-स्तु ति में
सू र्य दे व
क र ते आ ये
आ ज त क।

आ ज त क
"नो ङ् -दा ला इ रे न्
पा ख ङ्
वा" के
यु ग से।
ई स वी स न्
3 3 ! "औ प्री"
स्तु ति यह
दे ख लें चा हें तो
"ल यि
श्रा
फा म्"
में !
ल यि श्रा फा म् में !
ल यि श्रा फा म् में !

॥ नौकाओं का मेला ॥

और...वो, वो, वो !
तीर-सी भागतीं स र्र र्र र्र...
स र्रा टे से
इ स ती र से
उ स ती र को
नौ का एँ ही

नौ का एँ...
दू र त क
"हि ज न हि रा ओ" में
नौ का एँ नौ का एँ...
वि ज य - स्प र्धा
की हो ड़ में स र ती
भा ग ती जा तीं...

क था का दी र्घ त म
पा ट है...
"हि ज न हि रा ओ"। दे खो
क था का पा ट।...औ र भी
"हि ज न हि रा ओ" के

इ स म हा का व्य में
ए क से ए क भ रे
वि स्मय का री रो मां च क
आ ख्या न।...
ए क से एक...!

॥ मोइराँ साइओन् रासो ॥

"मो इ राँ सा इ ओ न्"।
नि धि है नि धि
क था ओं की नि धि।
"मो इ राँ सा इ ओ न्"
[हिन्दी 'मोइ रंग साँइयाँ' नहीं !
—नहीं !]
"मो इ राँ सा इ ओ न्" की जो
अन्तिम क था :
"खं भा थो इ ली"
रा सो :

एक-कम चालीस हज़ार पद्य
पूरा रासो-रूमान।

मणिपुरी मानस का
सचमुच
'आधुनिक
मान।'
"अं-आहल्. सिंह." कवि।

"अं-आहल् सिंह" होने
इसमें
पुण्य प्रकृति के
ताने
विविध वितान
सुरलोकों से लेकर मानो
लोक-सुरों के
अद्भुत्
सांग... और
मनोहर मोहक
गान:
"अं-आहल सिंह" है इसका अभि-

देखो, फैले यहाँ
प्रकृति के
कैसे-कैसे
रंग-बिरंगे
विविध विधान!

"अं-आहल् सिंह...मोइरा"
"मोइरा साइओन्" "मोइरा साइओ"
['मोइरंग साँइयाँ' नहीं।]

॥ प्रेम कादंबरी ॥

"पां थो इ-बी" की
प्रे म-क हा नी।
"पां थो इ-बी खो इ-बु ल" थो
कि स की प्या री?
कि स की प्रा ण-पि या री?

—"नो ङ् पो क् नि ङ् थौ" को।
"नो ङ् पो क् नि ङ् थौ" की।

दो नों आ ज भी जी वि त
3 री स दी से।
गा य क ज न मा न स में।

म णि पु र में ज ब प ह ले-प ह ल
न ये-न ये आ या जो म न न

आ ये प र दे शी ब न आ रे
न थ को!
दो का द म्ब रि यां हैं:

1. "पो इ र इ तो न्"
2. "कु न्थ क-
पा"...

1. "पो इ र इ तो न्"
2. "कु न्थ क-
पा"...

ये का द म्ब रि यां।

बा ण भ ट् ट इ न के अ ज्ञा त।

पो इ   र इ   ना न
"कु न्य क - पा"

"पो इ   र इ   तो न"   "कु न्य अ - पा
"पो इ   र इ......"

एक नीला दरिया बरस रहा

एक नीला दरिया बरस रहा है
और बहुत चौड़ी हवाएँ हैं
मकानात हैं मैदान
किस क़दर ऊबड़-खाबड़
मगर
एक दरिया
और हवाएँ
मेरे सीने में गूँज रही हैं।

एक रोमान
जो कहीं नहीं है मगर जो मैं
हूँ हूँ
एक गूँज ऊबड़-खाबड़
लगातार
आँख जो कि अँखुआ
आयी हो बहुत ही क़रीब बहुत
ही क़रीब।

(2)

एक सुतून
फिर हुआ खड़ा
वहीं

टूटी हुई बिखरी हु

जहाँ कि वह शुरू से था खड़ा
    एक जुनून
जो कि महज़ नाम था
        फिर हुआ
        जुनून
सब तुकें एक हैं
यानी कि   मेरा
ख़ून।

अजब बेअदबी है ज़माने की—कि
कि
अक्स है   इन्तिहाई गहरा
वही दरिया...
और वो मुझे ले गया डुबा
जहाँ इन्तिहाई गहराइयों के सिवा
        और कुछ न था
एक इन्तिहाईपन......[illegible]
  जो कि महज़ [illegible]   [illegible]
    मैं हूँ—और
      कुछ नहीं
      यहाँ।

(3)

      मगर
मेरी पसली में हैं—गिन लो
    व्यंजन : और उनके बीच में हैं
      स्वर
    उसे मेरा ही कहो--फ़िलहाल :
[अहा, तुम कितने अच्छे हो कि मूर्ख हो – महात्मा मूर्ख
—इस ज़माने के स्वाँग में उतरे हुए
...एक आदिमतम देवता : स्थिरतम !]

नहीं नहीं नहीं
वह
स्वर :

एक ही हाथ : थामें आकाश को उठाये हुए है
एक गोल गति इक् करोड़ लाख बार घूम घूम
कर

मुझे लील जाती है
समूचा
अथाहों के दरिया में
अपने अक्स समेत
सच्च
वह स्वर।

(4)

तब मेरे लिए पहाड़ अरावली के
पुरातन-तम
खोद खोद डाले गये होंगे
सदैव के गूढ़ भविष्य में अभी से
नग्नगाम बिवाइयाँ दरारें
धरती के सीने में अन्दर तक चली गयी हुई
घूम घूम कर
एक स्थिर चक्कर में
कविता की पंक्तियों की तरह—
अभी से।

(5)

हाँ मगर
वह
स्वऽ
र
एक फ़नल

धुँधुआता
विशाल आकाश में

और वही
मैं
सीढ़ियों के-से
उलझे-पुलझे पथों से
चढ़ रहा हूँ उतर रहा हूँ चढ़ रहा...
तर रहा...

हूँ
और वहीं
एक
बड़ा नन्हा-सा
बड़ी गहराइयों वाला
अणु है अणु
नहीं मालूम ? अणु
गूँजता हुआ
एक व्यर्थ का अभ्युदय,
याकि
व्यर्थ का तुक——
क्षण का
निरन्तर——
एक बूँद लहू
और लो मेरा आविर्भाव
कि भवता
कि है-हो-था
अभी तक
वही मैं कोई
एक कविता।

(6)

एक विलयनवादी काव्य जोकि केवल
मैं लिखता———लिख सकता———हमेशा नहीं — —
वैसा काव्य। जैसा कि इनमें
ध्वनित-अध्वनित :

स्व
—
—
—
—इत्यादि।

समग्र के
चौराहों के चकित केन्द्रों से
उद्भूत होता है कोई : "उसे-व्यक्ति-कहा" :
कि यही काव्य है।
आत्मतम।
इसीलिए उसमें आने को खो दिया
जाना गवारा करता हूँ
    क्योंकि वहाँ मेरा एक महीन युग-भाव है
वही...शायद मेरे लिए...मात्र। शायद
मेरे ही अनेक बिंबों के लिए मात्र।
जिन्हें "मेरे पाठक कहा जाय" मात्र।

तो। उसमें और कुछ नहीं।
कोई संगीत नहीं। केवल प्रलाप।
                    केवल तम।
केवल प्रलाप। केवल मैं और आप। अनाप शनाप।
शराब
यानी इन्सानियत की तलछट का छोड़ा हुआ
स्वाद।
मुझे दो।
मगर पैमाना हो

फोनिमिक्स
उन भाषाओं का, पश्चिम और पूर्व की, जो
मिलनसीमा को
आर्गनित
करती हैं,
बस
वहीं मेरा कवि :
तुम्हारा अन्यतम व्यक्ति ।

नश्शा मुझे नहीं होता । नहीं होता ।
मुझे पीने वालों को
होता
है—मेरी कविता को
अगर वो उठा सकें और एक घूँट
पी सकें
अगर ।

इसलिए बस
मुझे वही शराब दो । बस ।
[—मुझे नश्शा नहीं चाहिए ।]

रोशनी

मालिश तुम्हारे बदन की
मेरे बदन की करती है
हर सूर्योदय में

हर सुनहरी सुबह
तुम्हारा बदन है

एक साँवलेपन के
आर-पार नाचता

बार-बार
हर
हर सुबह

28.2.84
8 बजे

मेरे अन्दर कैसी...

मेरे अन्दर कैसी एक अमृत की बूँद है,
अमृत की एक टिम-टिम, अनबुझ,
साँसों की तह में एक अमर
अनबुझ-सी टिम-टिम, अदृश्य-सी,
मगर है......
वह
बूँद
अमर।

खूब ग़ौर से अपने अन्दर
देखो,
...,
अगर तुम खूब खूब खूब
देखो...

वह दूर
क्षीण
झिलमिलाहट निश्चित अमर है...।

"मैं देख रही हूँ।"

तुमने मुझे

तुमने मुझे और गूँगा बना दिया
एक ही सुनहरी आभा-सी
सब चीज़ों पर छा गयी

मैं और भी अकेला हो गया

तुम्हारे साथ गहरे उतरने के बाद
मैं एक ग़ार से निकला
अकेला, खोया हुआ और गूँगा

अपनी भाषा तो भूल ही गया जैसे
चारों तरफ़ की भाषा ऐसी हो गयी
जैसे पेड़ों पौधों की होती है
नदियों में लहरों की होती है

हज़रत आदम के यौवन का बचपना
हज़रत हौव्वा की युवा मासूमियत
कैसी भी ! कैसी भी !

ऐसा लगता है जैसे
तुम चारों तरफ़ से मुझसे लिपटी हुई हो
मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के मुख में
आनन्द का स्थायी ग्रास...हूँ

मूक ।

एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा

एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा

सचमुच ?
जंघाएँ दो ठोस दरिया
ठै रे हुए-से
मगर जानता हूँ कि वो

बराबर-बराबर बहुत तेज़
रौ में हैं
ठै रा हुआ-सा मैं हूँ मेरी
दृष्टि एकटक्

ठोस वक्ष कपोल उभरे हुए चारों
निमंत्रण देते चैलेंज-सा
चारों एक साथ
अपनी स्थिरता में, चल
काल की तरह

चरण
हैं वहीं मगर दर असल हैं नहीं वहाँ
वो उस अष्टधातु की मूर्ति को
कहीं लिये जा रहे हैं
शायद
मेरे व्यक्तित्व के अदृश्य सागर की ओर।।

सागर-तट

यह समंदर की पछाड़
तोड़ती है हाड़ तट का—
अति कठोर पहाड़।

पी गया हूँ दृश्य वर्षा का :
हर्ष बादल का
हृदय में भर कर हुआ हूँ हवा-सा हलका।

धुन रही थीं सर
व्यर्थ व्याकुल मत्त लहरें
वहीं आ-आकर
जहाँ था मैं खड़ा
मौन ;
समय के आघात से पोली, खड़ी दीवारें
जिस तरह घहरें
एक के बाद एक, सहसा।

चाँदनी की उँगलियाँ चंचल
क्रोशिये से बुन रही थीं चपल
फेन-झालर बेल, मानो।
पंक्तियों में टूटती-गिरती
चाँदनी में लोटती लहरें

बिजलियों-सी कौंदती लहरें
मछलियों-सी बिछल पड़तीं तड़पती लहरें
बार-बार।

स्वप्न में रौंदी हुई-सी विकल सिकता
पुतलियों-सी मूँद लेती
आँख।

यह समंदर की पछाड़
तोड़ती है हाड़ तट का—
अति कठोर पहाड़।
यह समंदर की पछाड़

प्रेयसी

एक

तुम मेरी पहली प्रेमिका हो
जो आइने की तरह साफ़
बदन के माध्यम से ही बात करती हो
और शायद (शायद)
मेरी बात साफ़-साफ़
समझती भी हो।
प्यारी, तुम कितनी प्यारी हो।
वह काँसे का चिकना बदन हवा में हिल रहा है
हवा हौले-हौले नाच रही है,
इसलिए...

—तुम भी मेरी आँखों में
(स्थिर रूप में साकार रहते हुए भी)
हौले-हौले अनजाने रूप में
नाच रही हो
हौले-हौले
हौले-हौले यह कायनात हिल रही है

दो

गन्दुमी गुलाब की पाँखुड़ियाँ
खुली हुई हैं

आँखो की शबनम
दूर चारों तरफ़
हँस रही है
यह मीठी हँसी
जो मेरे अन्दर घुलती जा रही है
तुम हो।
तुम्हारा सुडौल बदन एक आबशार[1] है
जिसे मैं एक ही जगह खड़ा देखता हूँ
ऐसा चिकना और गतिमान
ऐसा मूर्त सुन्दर उज्ज्वल

तीन

यह पूरा
कोमल काँसे में ढला
गोलाइयों का आईना

मेरे सीने से कसकर भी
आज़ाद है
जैसे किसी खुले बाग़ में
सुबह की सादा
भीनी-भीनी हवा

यह तुम्हारा ठोस बदन
अजब तौर से
मेरे अन्दर बस गया है।

1. जल-प्रपात

नींद

देखो – वो ऽऽ......
काजल की तलवार
डूबी पलकन धार।

जागे
सुप्त हृदय पर
केवल
कोमलतम तिल
एक
उघार।

देखो ओ ऽ वो ऽऽ......
मर्म उघारे
चमक रहे हैं तारे
खिसक रही है रात
असंख्य
आँख
पसारे।

तुमको पाना है अविराम

तुमको पाना है, अविराम
सब मिथ्याओं में,
ओ मेरी सत्य !

मुझसे दूर अलग न जाओ।
मुझको छोड़ न दो
कहीं मुझको छोड़ न दो
तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध।

जाओ
किन्तु मुझमें बसकर
सुगन्ध की तरह
मेरे साथ
मैं हवा की तरह अदृश्य ही जब हो जाऊँ
जहाँ कहीं जाओ।

तुम मुझको दो
अपना रूप
अपना मद
अपना यौवन
अपनी शक्ति
अपनी माया
अपना प्रेम छल

अपना सत्य—मेरा !

ओ मेरी ही केवल तुम
मेरे साथ रहो
मुझको छोड़ो नहीं
स्वप्न में भी,
तुमको
मेरे प्राणों की शपथ

मलूँगा मैं वक्ष से तुम्हारे
अपने जीवन का समस्त वक्षस्थल
लिपटूँगा मैं अंग-अंग से तुम्हारे
मधुरतम सुवास बन
उच्च से उच्चतर मैं हूँगा तुम्हारे ब्रह्मांड में—
तुम्हारे हृदय में—
तुम्हारा ही बनूँगा मैं, केवल तुम्हारा ।
हूँ मैं तुम्हारा उपेक्षित भाव
सुधर-सा रहा हूँ पर धीरे-धीरे
अंगीकृत होने ।

ओ मेरी सुख,
मेरी समस्त कल्पना के पीछे एक सत्य
मुझ उपेक्षित को स्नेह स्वीकृत करो
मेरे जीवन की सुख
सरल सहवास का सौन्दर्य
मधुर ऐक्य सुख ।

मेरे समय को...

मेरे समय को एक क़ाश की तरह काट दिया गया है।

× ×

कवि एक बड़ा-सा तोता है, जैसे कि मैं।
जिसे उसके संरक्षक पालते हैं।
कई होते हैं वो।

× ×

शतरंज का एक खाना है
जिसमें तुम मुझे ऊपर उठाकर रखते हो
हवा में कुछ देर अँगूठे और अँगुलियों के बीच
अनिश्चय में थामे हुए
जिस समय मैं समझता हूँ कि यह
मेरी कल्पनाशीलता का लोक है
मगर जो वास्तव में एक बारीक काट है
रुके हुए साँस की।

काल, तुझसे होड़ है मेरी

काल,
तुझसे होड़ है मेरी : अपराजित तू—
तुझमें अपराजित मैं वास करूँ।
इसीलिए तेरे हृदय में समा रहा हूँ
सीधा तीर-सा, जो रुका हुआ लगता हो—
कि जैसा ध्रुव नक्षत्र भी न लगे,
एक एकनिष्ठ, स्थिर, कालोपरि
भाव, भावोपरि
सुख, आनन्दोपरि
सत्य, सत्यासत्योपरि
मैं—तेरे भी, ओ 'काल' ऊपर!
सौन्दर्य यही तो है, जो तू नहीं है, ओ काल!

जो मैं हूँ—
मैं कि जिसमें सब कुछ है...

क्रान्तियाँ, कम्यून,
कम्युनिस्ट समाज के
नाना कला विज्ञान और दर्शन के

जीवन्त वैभव से समन्वित
व्यक्ति मैं।
मैं, जो वह हरेक हूँ
जो, तुझसे, ओ काल, परे है।

बात बोलेगी

बात बोलेगी,
   हम नहीं।
भेद खोलेगी
   बात ही।

सत्य का मुख
   झूठ की आँखें
   क्या——देखें !

सत्य का रुख़
   समय का रुख़ है :
अभय जनता को
   सत्य ही सुख है,
   सत्य ही सुख।

दैन्य दानव ; काल
भीषण ; क्रूर
स्थिति ; कंगाल
बुद्धि ; घर मजूर।

सत्य का
   क्या रंग ?——
पूछो
   एक संग।

एक—जनता का
दुःख : एक।
हवा में उड़ती पताकाएं
अनेक।
दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि : मजूर घर-भर।
एक जनता का—अमर वर :
एकता का स्वर।
अन्यथा स्वातंत्र्य-इति।

वाम वाम वाम दिशा

वाम वाम वाम दिशा,
समय साम्यवादी।
पृष्ठभूमि का विरोध अंधकार-लीन। व्यक्ति...
कुहाऽस्पष्ट हृदय-भार, आज हीन।
हीनभाव, हीनभाव
मध्यवर्ग का समाज, दीन।

किन्तु उधर
        पथ-प्रदर्शिका मशाल
कमकर की मुट्ठी में—किन्तु उधर :
        आगे-आगे जलती चलती है
        लाल-लाल
वज्र-कठिन कमकर की मुट्ठी में
        पथ-प्रदर्शिका मशाल।

भारत का
भूत-वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिये
काल-मान-विज्ञ मार्क्स-मान में तुला हुआ
वाम वाम वाम दिशा,
समय : साम्यवादी।

अंग-अंग एकनिष्ठ
ध्येय-धीर
सेनानी
वीर युवक
अति बलिष्ठ
वामपंथगामी वह...
समय : साम्यवादी।

लोकतन्त्र-पूत वह
द्रुत, मौन, कर्मनिष्ठ
जनता का :
एकता-समन्वय वह...
मुक्ति का धनंजय वह
चिरविजयी वय में वह
ध्येय-धीर
सेनानी
अविराम
वाम-पक्षवादी है...
समय : साम्यवादी।

य' शाम है

[ग्वालियर की एक खूनी शाम का भाव-चित्र। लाल झंडे, जिन पर रोटियाँ टँगी हैं, लिए हुए मजदूरों का जुलूस। उनको रोटियों के बदले मानव-शोपक शैतानों ने—ग्वालियर की सामन्ती रियासती सरकार ने—गोलियाँ खिलायी। उसी दिन—12 जनवरी, 1944—की एक स्वर-स्मृति।]

य' शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का।
लपक उठीं लहू-भरी दरातियाँ,
            —कि आग है :
धुआँ धुआँ
सुलग रहा
गवालियर के मजूर का हृदय।

कराहती धरा
कि हाय-मय विषाक्त वायु
            धूम्र तिक्त आज
            रिक्त आज
            सोखती हृदय
                        गवालियर के मजूर का।

गरीब के हृदय
टँगे हुए
कि रोटियाँ लिए हुए निशान
लाल लाल
जा रहे
कि चल रहा
लहू-भरे गवालियर के बजार में जलूस :
जल रहा
धुआँ धुआँ
गवालियर के मजूर का हृदय।

कुछ मुक्तक

भाव थे जो शक्ति-साधन के लिए,
लुट गए किस आन्दोलन के लिए !
यह सलामी दोस्तों को है, मगर
मुट्ठियाँ तनती हैं दुश्मन के लिए !
धूल में हमको मिला दो, किन्तु, आह,
चालते हैं धूल कन-कन के लिए।
तन ढँका जाएगा धागों से, परन्तु
लाज भी तो चाहिए तन के लिए।
नाज पकने पर खुले आकाश से
बिजलियाँ गिरती हैं निर्धन के लिए।
संकुचित है आज जीवन का हृदय,
व्यक्ति-मन रोता है जन-मन के लिए।

अमन का राग

सच्चाइयाँ
जो गंगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती रहती हैं
हिमालय की बर्फ़ीली चोटी पर चाँदी के उन्मुक्त नाचते
परों में झिलमिलाती रहती हैं
जो एक हज़ार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समंदर
है
उमंगों से भरी फूलों की जवान कश्तियाँ
कि बसंत के नये प्रभात सागर में छोड़ दी गई हैं।

ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के
गिर्द
लपेट लिया
और मैं यूरोप और अमरीका की नर्म आँच की धूप-छाँव
पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शांति का राग हूँ
बहुत आदिम, बहुत अभिनव।

हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे
सुलग उठे हैं
सब एक साथ ढाई अरब धड़कनों में बज उठे हैं

सिम्फ़ोनिक आनद की तरह
यह हमारी गाती हुई एकता
संसार के पंच परमेश्वर का मुकुट पहन
अमरता के सिहासन पर आज हमारा अखिल लोक-
प्रेसिडेंट
बन उठी है।

देखो न हक़ीक़त हमारे समय की कि जिसमें
होमर एक हिन्दी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने क़रीब बुला रहा है
कि जिसमें
फ़ैयाज़ ख़ाँ विटाफ़ेन के कान में कुछ कह रहा है
मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी
मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में
झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कालिदास को वैमर के कुंजों में विहार करते
और आज तो मेरा टैगोर मेरा हाफ़िज़ मेरा तुलसी मेरा
ग़ालिब
एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का
कुशल आपरेटर है।

आज सब तुम्हारे ही लिए शांति का युग चाहते हैं
मेरी कुटूबुटू
तुम्हारे ही लिए मेरे प्रतिभाशाली भाई तेजबहादुर
मेरे गुलाब की कलियों से हँसते-खेलते बच्चों
तुम्हारे ही लिए, तुम्हारे ही लिए

मेरे दोस्तो, जिनसे ज़िन्दगी में मानी पैदा होते हैं
और उस निश्छल प्रेम के लिए
जो माँ की मूर्ति है
और उस अमर परमशक्ति के लिए जो पिता का रूप है।

हर घर में सुख
शांति का युग
हर छोटा-बड़ा हर नया-पुराना हर आज-कल-परसों के
आगे और पीछे का युग
शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है।

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैचू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल
मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आए
मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की
चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।

यह कौन मेरी धरती की शांति की आत्मा पर कुरबान हो
गया है
अभी सत्य की खोज तो बाक़ी ही थी
यह एक विशाल अनुभव की चीनी दीवार
उठती ही बढ़ती आ रही है
उसकी ईंटें धड़कते हुए सुर्ख दिल हैं
यह सच्चाइयाँ बहुत गहरी नीवों में जाग रही हैं
वह इतिहास की अनुभूतियाँ हैं
मैंने सोवियत यूसुफ़ के सीने पर कान रखकर सुना है।

आज मैंने गोर्की को होरी के आँगन में देखा
और ताज के साये में राजर्षि कुंग को पाया
लिंकन के हाथ में हाथ दिये हुए
और ताल्स्ताय मेरे देहाती यूपियन होंठों से बोल उठा
और अरागों की आँखों में नया इतिहास
मेरे दिल की कहानी की सुर्खी बन गया

मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरुदा की भवों से
जाम की तरह टकराती है
वह मेरा नेरुदा जो दुनिया के शांति पोस्ट आफ़िस का
प्यारा और सच्चा कासिद
वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त आशिक़
मैं पंत के कुमार छायावादी सावन-भादों की चोट हूँ
हिलोर लेते वर्ष पर
मैं निराला के राम का एक आँसू
जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लौह पर्दों को
एटमी सुई-सा पार कर गया पाताल तक
और वहीं उसको रोक दिया
मैं सिर्फ़ एक महान विजय का इंदीवर जनता की आँख में
जो शांति की पवित्रतम आत्मा है।

पच्छिम में काले और सफ़ेद फूल हैं और पूरब में पीले
और लाल
उत्तर में नीले कई रंग के और हमारे यहाँ चम्पई-साँवले
और दुनिया में हरियाली कहाँ नहीं
जहाँ भी आसमान बादलों से ज़रा भी पोंछे जाते हों
और आज गुलदस्तों में रंग-रंग के फूल सजे हुए हैं
और आसमान इन खुशियों का आईना है।

आज न्यूयार्क के स्काईस्क्रेपरों पर
शांति के 'डवों' और उसके राजहंसों ने
एक मीठे उजले सुख का हलका सा अँधेरा
और शोर पैदा कर दिया है।
और अब वो आर्जेन्टीना की सिम्त अतलांतिक को पार
कर
रहे हैं
पाल राब्सन ने नई दिल्ली से नये अमरीका की
एक विशाल सिम्फनी ब्राडकास्ट की है
और उदयशंकर ने दक्षिणी अफ्रीका में नयी अजंता को

स्टेज पर उतारा है
यह महान नृत्य वह महान स्वर कला और संगीत
मेरा है यानी हर अदना से अदना इंसान का
बिल्कुल अपना निजी।
युद्ध के नक़्शों को क़ैंची से काटकर कोरियायी बच्चों ने
झिलमिली फूलपत्तों की रौशन फ़ानूसें बना ली हैं
और हथियारों का स्टील और लोहा हज़ारों
देशों को एक-दूसरे से मिलानेवाली रेलों के जाल में बिछ
गया है
और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के डिब्बों की
खिड़कियों से
हमारी ओर झाँक रहे हैं
यह फ़ौलाद और लोहा खिलौनों मिठाइयों और किताबों
से लदे स्टीमरों के रूप में
नदियों की सार्थक सजावट बन गया है
या विशाल ट्रैक्टर-कम्बाइन और फैक्टरी-मशीनों के
हृदय में
नवीन छंद और लय का प्रयोग कर रहा है।

यह सुख का भविष्य शांति की आँखों में ही वर्तमान है
इन आँखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आँखें सेंक
रहे हैं
ये आँखें हमारे दिल में रौशन और हमारी पूजा का
फूल हैं
ये आँखें हमारे कानून का सही चमकता हुआ मतलब
और हमारे अधिकारों की ज्योति से भरी शक्ति हैं
ये आँखें हमारे माता-पिता की आत्मा और हमारे बच्चों
का दिल हैं
ये आँखें हमारे इतिहास की वाणी
और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
ये आँखें हमारा अपना नूर और पवित्रता हैं
ये आँख ही अमर सपनों की हकीकत और

हक़ीक़त का अमर सपना हैं
इनको देख पाना ही अपने आपको देख पाना है, समझ
पाना है।

हम मनाते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों।

मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत

मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत
लेकिन इंसान के दर्शन हैं मुहाल।

दर्द की एक तड़प—
हलके-से दर्द की एक तड़प,
सच्ची तड़प
मैंने अगलों के यहाँ देखी है;—

या तो वह आज है ख़ामोश तबस्सुम में ज़लील
या वो है कफ़-आलूद;
या वो दहशत का पता देती है;
या हिरासाँ है;
या फिर इस दौर के ख़ाको-ख़ूँ में
गुमगश्ता है।

दो बातें

(अ)

कविताएँ :

एक ब्लैंक हैं

जिसमें

कवि तक नहीं

न कोई जूतों के निशान छूटे हुए

न चाय के धब्बे घरेलू

न पुरानी साड़ी के चीकट पर्दे

सफ़ाचट

सूना मैदान है

एक अक्षर भी तो नहीं

घास के तिनके का

सब खा गये सब खा गये सब खा गये

वे लोग !

(ब)

ओ मध्य वर्ग

तू क्यों क्यों कैसे लुट गया

दसों दिशाओं की भी दसों दिशाओं की भी

दसों दि शा ओं

में
तू कहाँ है कहीं भी तो नहीं
इतिहास में भी तू
असहनीय रूप से दयनीय
असहनीय
न-कुछ न-कुछ न-कुछ...
मैं
उसी का छाया हुआ
अँधेरा हूँ
शताब्दी के
अन्त में। छटता हुआ।

ईश्वर अगर मैंने अरबी में प्रार्थना की

ईश्वर अगर मैंने अरबी में
प्रार्थना की तू मुझसे
नाराज़ हो जायगा ?
अल्लमह यदि मैंने संस्कृत में
संध्या कर ली तो तू
मुझे दोज़ख में डालेगा ?
लोग तो यही कहते घूम रहे हैं।
तू बता, ईश्वर !
तू ही समझा, मेरे अल्लाह !

बहुत-सी प्रार्थनाएँ हैं
मुझे बहुत-बहुत
मोहती हैं।
ऐसा क्यों नहीं है कि
एक ही प्रार्थना मैं
दिल से क़ुबूल कर लूँ
और अन्य प्रार्थनाओं को
करने पर प्रायश्चित
करने का संकल्प करूँ !
क्योंकि तब मैं अधिक
धार्मिक अपने को महसूस
करूँगा इसमें कोई संदेह
नहीं है

सब यही कहते हैं
(मुझ से नहीं...उससे
भी अधिक उच्च घोषणा में
जो कि उनके कर्मों में
प्रसारित होती है।)
मैं चाहता हूँ उनके प्रचार
प्रसार से अभिभूत होना
क्योंकि अन्यथा मैं अपने को
अति ही अति ही
अति ही प्राचीन और
दक़ियानूसी महसूस करता
हूँ मानों मैं धर्म
और ईश्वर का
प्रारंभिक अर्थ नहीं
जानता।

हे मेरे ईश्वर, हे मेरे
अल्ला, मुझे
क्षमा करना! अफ़्व!
अफ़्व!

तुम दोनों ही मिलकर
मेरा अन्त कर दो
बेहतर है। वह
शान्ति जो आज
न होने में है——

'न होता मैं तो क्या होता...!'
न था मैं तो ख़ुदा था
कुछ न होता तो ख़ुदा होता!
डुबोया मुझको होने ने
न होता मैं तो क्या होता!'

×   ×

×   ×

आज वो नहीं है जो सुना
और कण्ठस्थ किया जाता है !
छपे काव्य में। लिपि संबंधी
दंगे
संस्कृति
बनने लगते हैं
जिसका शोध मेरे लिए दुरूहतम
साहित्य है
जन्म भर की आस्था के
बावजूद।

यह कविता नहीं मात्र
मेरी डायरी है
(अपनी मौलिक स्थिति में
छपाने की चीज नहीं
अपने से बातचीत है मात्र...
अपने मन के होंटों के स्वर
मन के कानों के लिए
अपने केवल मात्र...)

मनीषियो आलिमो
आचार्यो प्राचार्यो
अपना गहन अमूल्य समय
इन पंक्तियों को न देना यदि भूले से
इन्हें पढ़ने लगे हो
यहीं से इन्हें छोड़ देना।

...तो मैं कह रहा था

हमारी ज़मीन

हमारी ज़मीन जो सिर्फ़ अपने चाँद से
पास है, सूरज से कितनी दूर है
यद्यपि उससे बँधी हुई : और ग्रहों से भी
एक तरह से बँधी-सी ही हुई : मगर सदैव
के लिए अकेली—हमारी ज़मीन
जिस पर मैं हूँ : हम दोनों कितने
अकेले इस विश्व में ! एकदम कितने
अकेले—दूऽर सबसे...सबसे !
यद्यपि गुंजान खिलखिलाते या मिचमिचाते
तारों से घिरे हुए—एकदम घबरा देनेवाली
(तारों की)
झिलमिलाती झाड़ियों से घिरे हुए : फिर भी
उफ़ कितने असहाय और अकेले—मैं
और मेरी ज़मीन, इस विश्व में !

मैं तो खैर... ... ...
मेरी ज़मीन भी क्या
एक दिन

एक दिन ?
खैर !

जो नियम है वह नियम है।
जो नियम है वह—है।

ओ मेरे घर

ओ मेरे घर
ओ हे मेरी पृथ्वी
साँस के एवज़ तूने क्या दिया मुझे
—ओ मेरी माँ ?

तूने युद्ध ही मुझे दिया
प्रेम ही मुझे दिया क्रूरतम कटतम
और क्या दिया
मुझे भगवान दिये कई-कई
मुझसे भी निरीह मुझसे भी निरीह !
और अद्भुत शक्तिशाली मकानीकी प्रतिमाएँ !

ऐसी मुझे ज़िन्दगी दी
ओह
आँखें दीं जो गीली मिट्टी का बुदबुद-सी हैं
और तारे दिये मुझे अनगिनती
साँसों की तरह
अनगिनती इकाइयों में
मुझसे लगातार दूर जाते
मौत की व्यर्थ प्रतीक्षाओं-से !

और दी मुझ एक लम्बे नाटक की
हँसी
फैली हुई
दर्शकशाला के इस छोर से उस छोर तक
लहराती कटु-क्रूर।

फिर मुझे जागना दिया, यह कहकर कि
लो और सोओ!
और वही तलवारें अँधेरे की
अन्तिम लोरियों के बजाय!

इन्सान के अँखौटे में डालकर मुझे
सब कुछ तो दे दिया :
जब मुझे मेरे कवि का बीज दिया कटु-तिक्त।

फिर एक ही जन्म में और क्या-क्या
चाहिए!

बैल

मैं वह गुट्ठल काली कड़ी कूब वाला बैल हूँ
जो अकेला धीरे-धीरे छः मील खींचकर ले जाते हुए
ठेले पर ऊपर तक लदा हुआ माल
स्टेशन से दूर गोदाम तक
चुपचाप धीरे-धीरे, आँखें बाहर को निकली हुईं,
त्यौरी चढ़ी हुई, काँधे जोर लगाते हुए
सीना और छाती आगे को झुककर, ज़ोर लगाते हुए
रानें भरी हुईं गर्म पसीने से तर, मगर
ज़ोर लगाती हुईं,
नथुने फूले हुए, साँस और दम
अपनी ज़ोर आजमाई में लगे हुए
क्यों और किसके लिए?
अपनी शाम के, अपनी सुबह के
बँधे हुए
चारे के लिए
उससे मीठी उससे नमकीन और प्यारी
चीज़
दुनिया में और कोई है क्या?
या...रात की ठहरी हुई, बहुत गहराई से बोलती हुई
चुपचाप बोलती हुई—दम साधे आँखें मीचे
सबको देखती-सी हुई शान्ति के लिए

गम्भीर, प्राणों में उठती हुई शान्ति...
आकाश के तारे, कुत्तों का पागल शोर
जो इस शान्ति को बढ़ाता ही है
पहरुओं की ठक्-ठक्, सीटियाँ...
और कहीं दूर किसी गाय के गले की घण्टियाँ
कटड़ों और बच्चों की
हवा में
मासूम कच्ची-सी खुशबू, और घोड़ों का
खोखले गर्व से और बिला किसी वजह, बार-बार
टापें ज़मीन पर मारना
यह सब जो उस शान्ति को और
ठोस और स्थायी-सा बनाते हैं;
मालिक के खर्राटे, मालकिन की बच्चों को थपकियाँ
किसी बच्चे का रात में रो उठना
यह सब रात में कितना प्यारा लगता है
मुझे नहीं मालूम यह मेरे सपने का हिस्सा होता है
एक मीठी जागती नींद का, या जागरण का—
कोई अन्तर नहीं। मुझे यह महसूस होता है
कि ठेले को लगातार, सारी आँतों और
नसों के तनावों से खींचते हुए भी
जैसे
मैं
सो जाता हूँ
वह गहरा लगातार श्रम
पुट्ठों को श्लथ कर देने वाला
श्रम
स्वयं मेरी नींद का कवच बन जाता है
मालिक पर तब जो मुझे गुस्सा आता है
उससे मेरा जोर और बढ जाता है
मगर मुश्किल यह है

बात करता है
मुझे वह इस तरह निचोड़ता है जैसे
घानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर
पेरा जाता है
मेरे लहू की एक-एक बूँद किसके लिए
समर्पित होती है
यह तर्पण किसके लिए होता है ?
सुबह के अन्न देव के लिए ?
शाम के अन्न देव के लिए ?
जिसका नाम चारा है :
यह एक मोटी और स्पष्ट बात है,
गीत नहीं
कि वह चारा है और मैं बेचारा।
मेरा मालिक भी शायद एक अन्य दो टाँगों पर खड़ा
और मुँह वाला कपड़ा पहनने वाला
बैल है : एक गन्दा-सा नाटा-सा बैल
कमजोर मगर बहुत चालाक और गीत गुनगुनाने वाला
बैल...वो गीत मुझे अच्छे लगते हैं...मगर
कभी-कभी मैं अपने इसी श्रम में
कहाँ खो जाता हूँ, कुछ पता नहीं चलता
यह सारी दुनिया मुझे बैल मालूम होती है
बाँऽऽऽऽऽऽ ! बाँऽऽऽऽ ! बाँऽऽऽऽऽ !

एक आदर्श/लहरों के पार...

एक आदर्श
लहरों के पार
अद्‌भुत रूप से मौन है
और हमारे उसके बीच मौन विस्तार में
कोई अमूल्य व्यर्थता चमक रही है
और इसी किनारे पर है वह तेज धार वाला पौदा
तू उसी विस्तार की रंगीनियों में
अँजुली भर अँजुली भर

नदियों में अनुभव का ताप खिला हुआ है
उस पर मुर्दों की छाया-सी
कोई चील उतर रही है

ख़ाली बूँदें टप-टप गिर रही हैं : तरलता कितनी बेजान है
यहाँ से शान्ति के गह्वारे बहुत दूर हैं बहुत दूर हैं

हम राख हैं जो आईने के मुँह पर मले हुए हैं
क्या उसे माँजने के लिए ?

नींद में ही हमारी यातना चित्र बनती है   ओह
उसे कैसे समझें
सरल और दुरूह हमारा दुख बच्चों-सा ही है।

धारीदार जाँघिया पीला

धारीदार जाँघिया पीला
　　　　　　　　　　और धारीदार बनयान पहने
धीरे-धीरे बेआवाज, पंजों के बल
चलता हुआ हल्के अँधेरों से
निकलकर हल्के अँधेरों में
लोप हो गया

उसकी आगे को बढ़ी हुई
झुकी-झुकी गर्दन
　　　　　　और तेज़ चमकती आँखें
अब भी उसी रास्ते पर
　　　　　　　　　　तैरती-सी धीरे धीरे
　　　　　　　　　　बढ़ती जा रही हैं
हल्के अँधेरे को और सघन
और गहरा और गहरा करती

हर-हर कदम पर वो पतला सर
एक बे-मालूम झटके से
　　　　　　दाँयें से बाँयें को बाँयें से दाँयें को
हिलता हुआ अब भी मेरे आगे से
　　　　　　　　　　चुपचाप निकला जा रहा है

यह सड़क बियाबान है
यह घरों की कतार कोई सूना-सा जंगल
मैं यहाँ हूँ कौन
वह मुझे नहीं देख रहा है या शायद
बहुत अच्छी तरह जाने हुए हो कि
यहाँ कोई है
पर उसके लिए ऐसा ही है
जैसे यहाँ कोई नहीं

अब भी इत्मीनान से
उसी एक चाल से और उसी अन्दाज से
वो मेरे सामने से धीरे-धीरे
निकला चला जा रहा है।

कत्थई गुलाब

कत्थई गुलाब
दबाये हुए हैं
नर्म नर्म
केसरिया साँवलापन मानो
शाम की
अंगूरी रेशम की झलक,
कोमल
कोहरिल
बिजलियाँ-सी
लहराये हुए हैं

आकाशीय
गंगा की
झिलमिली ओढ़े
तुम्हारे
तन का छन्द
गतस्पर्श
अति अति अति नवीन आशाओं भरा
तुम्हारा
बन्द बन्द

"ये लहरें घेर लेती हैं
ये लहरें.........
उभरकर अर्द्धद्वितीया
टूट जाता है........."

किसका होगा यह पद
किस कवि-मन का
किस सरि-तट पर सुना ?

ओ प्रेम की
असम्भव सरलते
सदैव सदैव !

बादलों के मौन गेरू-पंख

बादलों के मौन गेरू-पंख, संन्यासी, खुले हैं
श्याम पथ पर
स्थिर हुए-से, चल।

तू कि पत्थर हो गया है
ओ विहग-मन,
बैठता जाता रहा है
किस दिशा में ?

तन नहीं पाताल
केवल पाँव के नीचे गयी है घूम
धरती।

तू किधर जाता रहा है
किस दिशा की नोक-सा, ओझल ?

सुरमई-गेरू
पख

आंखो मे, खोल्ल हैं श्याम पथ पर
कौन-सी गति गहन ?

तुम मुझे खोते गये हो : यही अर्थ
है समय की चाल का।
बस।

सन्ध्या

सन् ध्या दी र्घ रमी या
उच्छ्वा सां गी श्री या
स्व र्ग गा अप नों की
इ त नी पास अपने ?

श क्तिः स्रो ता दग धा
वा णी आ भा ओं की
शा न्तिः श्री प्रा णों की
इ त नी पास अपने !

बा दल अक तू बर के
हल् के रं गीन् ऊ दे
मद् धम् मद् धम् रु क् ते
रु क् ते-से आ जा ते
इ त ने पास अपने !

एक् - इक पत् ता सा कत्
ठे रा, सन् ध्या भा में
सुन ता-सा कुछ...कि स को
इ त ने पास अपने !

यादों की छायाएँ
बादल् के भाला पर
चमकी-सी लय होने
धीरे धीरे धीरे
इतने पास अपने!

वाणी विद्युल्लेखा—
से क्या इंगित करती
देखा? तूने देखा?
तेरे स्वर का स्वर है
कितने पास अपने!

चुका भी हूँ मैं   नहीं !

चुका भी हूँ मैं   नहीं
कहाँ किया मैंने   प्रेम
अभी।

जब करूँगा   प्रेम
पिघल उठेंगे
युगों के भूधर
उफन उठेंगे
सात सागर।
किन्तु मैं हूँ मौन   आज
कहाँ सजे मैंने साज
अभी।

सरल से भी गूढ़,   गूढ़तर
तत्व निकलेंगे
अमित विषमय
जब मथेगा प्रेम सागर
हृदय।

निकटतम सबकी
अपर शौर्य्यों की
तुम
तब बनोगी एक
गहन मायामय
प्राप्त सुख

तुम बनोगी तब
प्राप्य जय !

शंख-पंख

बिजली के/ऑरोरा/शंख-पंख
झलझल कर/भृंग-माल
एक मौन/विस्मय से
उठे-उड़े

भूतल पर
नव-निधान से !

तीन तरफ़ों का सपाट...कोना

तीन तरफ़ों का सपाट
(छत और दीवारों का) कोना

तीन कोण

तीन तस्वीरों को मिलाते हुए
मिला कर बनाते हुए
एक तस्वीर

सिर्फ़
भाव-कल्पना में
हिलती

जैसे
दो फैले हुए डैने हों या
दो सींग चाहे बारहसिंघे के
छत के कोने पर साफ़ एक चोंच
या नथने और दो आँखें
दोनों दीवारों को
दोनों कोणों से सीधे
पड़तालतीं

एक दीवार पर जो सीमेंट चूने की सीली
सियाह मटैली झाड़ियों का मैदान

टूटी हुई बिखरी हुई /

ऊबड़-खाबड़ बन गया है
एक सोयी हुई चरागाह
या खोये हुए घोंसलों का
छिपा हुआ व्यूह है
मेरे प्यार और विचार और अध्ययन संसार से
बिलकुल मिलता-जुलता
मेरे घिरते बुढ़ापे के धुँधले तट पर।

इन याद के जानवरों पक्षियों को
डुबा देंगी शाम को दीवारें
उम्र के बढ़ते नाख़ून उन्हें
कहाँ टटोल पायेंगे
यह अशोक वाजपेयी नौजवान कवि
तुम्हारी उम्र दराज़ हो
देखो न वहाँ जल नहीं है
उसकी आभा है
उस दीवार पर
जहाँ पशु और पक्षी
ठिठक-से गये हैं
और मैं भी।

नींद के तंग आकाशों की जमी हुई

नींद के तंग आकाशों की जमी हुई
      गर्द से भारी हो उठी है यह छाती।
नमक-जैसे मैले संगमर्मर का बादल मेरी
      आँखों में कब तक गड़ता—घुलता जायेगा ?

×   ×

तारों-सी हैं मेरी बातें—
दुर्बोध, अति सरल, अति दूर, अति निकट,
      पलकों में।
बच्चों-सा है मेरा दुख जो खोये गये हों
      दुनिया के, महामरु में
जिनको अपनाने—क़ाफ़िले आँधी के
      उठते हों केवल।

प्रभात

जागरण की चेतना से मैं नहा उठा।
सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता।

केश वन में झिलमिला कर डूबते हैं
कमल
मधु चेतन कुमार
दल
जागरण की चेतना से...

प्राण मेरी
दृष्टियाँ अनुक्षण
परस्पर देखतीं
खुल-मुँद
असंख्य
चपल शीतल दृग
पुलक पल लिये
अपरम्पार।

रवि
कमल के नाल पर बैठा हुआ मानो
एक एड़ी पर टिकाये
मौन।

सूर्यास्त

सूर्य मेरी अस्थियों के मौन में डूबा।
गुट्ठल जड़ें
प्रस्तरों के सघन पंजर में
मुड़ गयीं।

व्योम में फैले हुए महराब के विस्तार
स्तूप औ' मीनार नभ को थामने के लिए
उठते गये।
विकटतम थे अति त्रिकटतम
विगत के सोपान पर्वत शृंग।

मेरु
फेन-फूलों से गुथी सागर-लटों के बीच-बीच
थाह लेता
विशद
जल विशद।
विशद।

अमित आकांक्षा उभार
दाह का आलोक है केवल

धैर्य कितना धैर्य
औ' सन्तोष

टूटी हुई बिखरी हुई

कितना
आज के दिनमान की परछाइयों में
किरण का मासूम वैभव।

किरण का मासूम वैभव
यह किधर झुकता है ?

योग

सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता
केश-वन में झिलमिला कर डूब जाता
स्वप्न-सा निस्तेज गतचेतन कुमार

कमल तल में खिले सर के,
शीर्षासन से।

जागरण की चेतना से मैं नहा उठा।

हवा है मेरी असंख्य
दृष्टियाँ अनुक्षण परस्पर देखतीं खुल-मुँद,
असंख्य
        चपल शीतल दृग
                पुलक फल लिये, अपरम्पार।

मैं कमल के नाल पर बैठा हुआ हूँ
एक एड़ी पर टिकाये मौन।

— — —

चट-चटक कर कमर बोली... (क्या ?)—
"घूमती लचती दिशाओं में
मैं पताका-सी।"

घिर गया है समय का रथ

मौन सन्ध्या का दिये टीका
रात
काली
आ गयी :
सामने ऊपर, उठाये हाथ-सा
पथ बढ़ गया।

घेरने को दुर्ग की दीवार मानों—
अचल विन्ध्या पर
कुंडली खोली सिहरती चाँदनी ने
पंचमी की रात।
घूमता उत्तर दिशा को सघन पथ
संकेत में कुछ कह गया।

चमकते तारे लजाते हैं
प्रेरणा का दुर्ग।
पार पश्चिम के, क्षितिज के पार
अमित गंगाएँ बहाकर भी
प्राण का नभ धूल-धूसित है।

भेद ऊषा ने दिये सब खोल
हृदय के कुल भाव,
रात्रि के, अनमोल।

दु:ख कढ़ता सजल, झलमल।
आँख मलता पूर्व-स्रोत ।

पुनः
पुनः जगती जोत।

× ×

घिर गया है समय का रथ कहीं।
लालिमा से मढ़ गया है राग।
भावना की तुंग लहरें
पन्थ अपना, अन्त अपना जान
रोलती हैं मुक्ति के उद्‌गार।

प्रेम की पाती

[घर के बसन्ता के नाम]

1

कौन के पीतम, कौन की पाती !
आस लगाये, दीया न बाती !

ओ मेरे साईं, ओ मेरे ईश्वर
तेरा ही नाम अब प्रानों की थाती !

होली का भय, दीवाली का आतंक
ईद मुहर्रम, एक ही भाँतिऽ !

पर्व के दिन और ऐसे भयानक
छलनी-छलनी रे देस की छाती !

प्रेम के संगी, धर्म के साथी
ऊँघ गये सब संग-सँगाती !

काले बजार में धर्म की दुल्हन
कैसे ये दूल्हा ! कैसे बराती !

हिन्दू कि मुस्लिम सिख कि इसाई
भारतवासी कौन एक् जातिऽ !

2

कौन पठायी किन्ने रे बाँची
प्रेम की पाती साँची रे साँची !

मैं तो न जानूँ उर्दू कि हिन्दी
प्रेम की बानी साँची रे साँची !

प्रान हमारे मान तुम्हारा
एक घरन थे, टाँक न टाँची !

आज गिरो कुल साख हमारो
देस में परखी लोक में जाँची !

आज सुहाग के फूल बखेरे
माई रे मेरी आग में ताँची !

फूल का काँटा फूल को छेदे
डंक-लगी सी भामरी नाची !

तीरथराज की आब गयी कल
आज इन्दौर है मेरठ, राँची !

धन गुजरात में गाँधी तरपन
धन्न रे धर्म की मूरत काँची !

वैष्णव-जन तो ऐनेई कहिये
साबर-सन्त शती यह साँची !

कैसा जग्य कि होम हुए हैं
मात-शिशु समिधा भर खाँची !

भारत-भाग्य-विधाता रे जन-मन
जन के रे मन पर चंडी नाची !

आज मनाओ घर के बसन्त।
प्रेम का पर्व है साँची रे साँची !

राग

मैंने शाम से पूछा—
            या शाम ने मुझसे पूछा :
                        इन बातों का मतलब ?
मैंने कहा—
शाम ने मुझसे कहा :
            राग अपना है।

2

आँखें मुँद गयीं।
सरलता का आकाश था
जैसे त्रिलोचन की रचनाएँ।
नींद ही इच्छाएँ।

3

मैंने उससे पूछा—
उसने मुझसे :
      कब ?
मैंने कहा—
उसने मुझसे कहा :
            समय अपना राग है।

4

तुमने 'धरती' का पद्य पढ़ा है ?
उसकी सहजता प्राण है।
तुमने अपनी यादों की पुस्तक खोली है ?
जब यादें मिटती हुई एकाएक स्पष्ट हो गयी हों ?
जब आँसू छलक न जाकर
आकाश का फूल बन गया हो ?
—वह मेरी कविताओं-सा मुझे लगेगा :
तब तुम मुझे क्या कहोगे ?

5

उसने मुझसे पूछा, तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है ?
मैंने कहा—कुछ नहीं ।
उसने पूछा—फिर तुम इन्हें क्यों लिखते हो ?
मैंने कहा—ये लिख जाती हैं। तब
इनकी रक्षा कैसे हो जाती है ?
उसने क्यों यह प्रश्न किया ?

मैंने पूछा :
मेरी रक्षा कहाँ होती है ? मेरी साँस तो—
तुम्हारी कविताएँ हैं : उसने कहा। पर—
इन साँसों की रक्षा कैसे होती आई ?
वे साँसों में बँध गये; शायद ऐसे ही रक्षा
होती आई। फिर बहुत-से गीत
खो गये।

6

वह अनायास मेरा पद गुनगुनाता हुआ बैठा
रहा, और मैंने उसकी ओर
देखा, और मैं समझ गया।
और यह संग्रह उसी के हाथों में खो गया।

7

उसने मुझसे पूछा, इन शब्दों का क्या
मतलब है ? मैंने कहा : शब्द
कहाँ हैं ? वह मौन मेरी ओर
देखता चुप रहा। फिर मैंने
श्रम-पूर्वक बोलते हुए कहा—कि :
शाम हो गयी है। उसने मेरी
आँखों में देखा, और फिर—एकटक देखता
ही रहा। क्यों फिर उसने मेरा संग्रह
अपनी धुँधली गोद में खोला और
मुझसे कुछ भी पूछना भूल गया।
मुझको भी नहीं मालूम, कौन था
वह। केवल यह मुझे याद है।

8

तब छंदों के तार खिचे-खिचे थे,
राग बँधा-बँधा था,
प्यास उँगलियों में विकल थी—
कि मेघ गरजे ;
और मोर दूर और कई दिशाओं से
बोलने लगे—पीयूअ् ! पीयूअ् ! उनकी
हीरे-नीलम की गर्दनें बिजलियों की तरह
हरियाली के आगे चमक रही थीं।
कहीं छिपा हुआ बहता पानी
बोल रहा था : अपने स्पष्टमधुर
प्रवाहित बोल।

दिन किशमिशी-रेशमी, गोरा

दिन
किशमिशी रेशमी गोरा
मुसकराता
आब
मोतियों की छिपाए अपनी
पाँखड़ियों तले

सुर्मयी गहराइयाँ
भाव में स्थिर
जागते हों स्वप्न जैसे
माँगते हों कुछ...
खिलौना जागता-सा
मौन कोई

क्या वही तो तू नहीं है मन ?

×

गोद यह
रेशमीगोरी, अस्थिर
अस्थिर
हो उठती
आज
किसके लिए ?

×

जा
ओ बहार
जा !
मैं जा चुका कब का
तू भी...
ये सपने न दिखा !

जाविदानी है अगर्चे तू
जाविदानी है अगर्चे ज़िन्दगी
फिर भी
रह्म कर !

गीत

शाम का आख़िरी गाना—
तुम आना न आना :
वो नाम तो मन को रटाना—न रुकेगा
शाम का गाना
न चुकेगा
शाम का आख़िरी गाना।
ये ताना-सा ताना है कोई : समझाना-बुझाना
कि मन बहलाना :
—वो शाम का आख़िरी गाना
शाम का गाना।

बीत गयीं जग की संध्याएँ,
जगती की सुन्दर संध्याएँ।
कहने को इक दुनिया आयी;—
आप न आये, न आये, न आये!
क्या भूलें क्या याद दिलायें;
कौन दिलाये, किसको दिलाये!
एक है आज तो भूलना, याद दिलाना—
शाम का आख़िरी गाना!

एक मौन

सोने के सागर में अहरह
एक नाव है
(नाव वह मेरी है)
सूरज का गोल पाल संध्या के
सागर में अहरह
दोहरा है...
ठहरा है...
(पाल वो तुम्हारा है)

एक दिशा नीचे है
एक दिशा ऊपर है
यात्री ओ !
एक दिशा आगे है
एक दिशा पीछे है
यात्रिओ !
हम-तुम नाविक हैं
इस दस ओर के :
अनुभव एक हैं
दस रस ओर के :

यात्रिओ !

आओ, इकहरी हैं लहरें
अहरह।
संध्या, ओ संध्या ! ठहर—
मत बह !
अमरन मौन एक भाव है
(और वह भाव हमारा है !)
ओ मन ओ
तू एक नाव है !
(और वह नाव हमारी है !)

•

घनीभूत पीड़ा
(एक सिम्फ़नी)

जबाँदराज़ियाँ ख़ुदी की रह गयीं :
तेरी निगाहें कहना था सो कह गयीं।

—कोई
आँख मुँदी है न खुली।
एक ही चट्टान...लहर पार लहर, पार...
सूर्य के इस ओर ठहर
स्तंभ-तुला पर सिहरा
मौन जलद-कन।
—आँख मुँदी है न खुली कोई।

× ×

बुलबुले उठे, उड़े
    —कि तीरछे मुड़े :
        खिले : फेन-कमल वन,
        उज्ज्वलतम :
घनपट से दूर, वार,—खुले।
कोमल कन, छन्-छन्, बुलबुले।
ज्योति-जुड़े।

× ×

खोल, उठा ज्योति के मयंक !
अंक मिटा भाल के, निशंक !
मोह-सत्य भौंह बंक।
लौह सत्य प्रेम-पंक।
...अन्यथा व्यथा व्यथा, वृथा...

है अनादि : आदि रंक—शून्य अंक।
तोल उठा वक्ष के अशंक भाव
की अथाहता !
××

वर्जित को जीत, भीत को भगा :
मौन प्रेम में पगा हृदय जगा !
सुप्ति-शुक्ति-पट विलोल,
खोले मुक्ताभ विमल उर अमोल
सम्पुट अलगा।

× ×

हे अमल अनल !
छोर कहाँ छोड़ा उस भाव का विमल :
सरिता-तट छोह जहाँ मोह का कमल ?

चट्टानें तानें लहरों की नित रहीं तोड़
गति मरोड़ रहीं मनःस्वन की,—
उन्चास मोड़
होड़ ले रहे तुमसे केवल,
हे अमल अनल !
हे अमल अनल !

× ×

देखा था वह प्रभात;
तुम्हें साथ, पुनः रात :
पुलकित...फिर शिथिल गात;
तप्त माथ, स्वेद-स्नात;
मौन म्लान, पीत पात;
पुनः अश्रु-बिम्ब-लीन
शनैः स्वप्न-कम्प वात।

× ×

हे अगोरती विभा,

जोहती विभावरी !

हे अमा उमामयी,

भावलीन बावरी !

मौन मौन मानसी,

मानवी व्यथा-भरी !

...

लजाओ मत अभाव की परेख ले :

समाज आँख भर तुम्हें न देख ले।

वसंत आया

फिर वाल वसंत आया, फिर लाल वसंत आया,
फिर आया वसंत !
फिर पीले गुलाबों का, रस-भीने गुलाबों का
आया वसंत !

सौ चाँद से मसले हुए जोबन पर
शृंगार की बजती हुई रागिनियाँ
रसराज की मधुपुरी की गलियों में
सौ नूरजहाँएँ, सौ पद्मिनियाँ
फिर लायीं वसंत,
—उन्मत्त वसंत आया !
फिर आया वसंत :
फिर बाल गुलाबों का, फिर लाल गुलाबों का
आया वसंत !

यौवन की उमड़ती हुई यमुनाएँ
फन-मणि की गुथी हुई लहर कलियाँ
रस-रंग में बौरी हुई राधाएँ
रस-रंग में माती हुई कामिनियाँ
फिर लायीं वसंत !
उन्मत्त वसंत आया !

फिर आया वसत
फिर पीले गुलाबों, फिर रस-भीने गलाबों का
आया वसंत !
फिर लाल वसंत आया, फिर बाल वसंत आया,
फिर आया वसंत !

धूप

धूप   थपेड़े मारती है   थप्-थप्
    केले के हातों से पातों से
    केले के थंवों पर

खसर-खसर एक चिकनाहट
    हवा में मक्खन-सा घोलती है

नींद-भरी आलस की भोर का
कुंज   गदराया है
यौवन के सपनों से
अभी अनजान मानो

नावें उछलती हैं लहरों में बादलों के
हलकीऽ हलकी मगन मगन
कि सीटियाँ-सी व्योम बजाता है चारों ओर
बेमानी तानें-सी आप ही आप गुनगुनाता है

चुम्बन की मीठी पुचकारियाँ
    खिला रहीं कलियों को फूलों को हँसा रही

घासों को गुदगुदियों न्हिला रहीं

नाच हैं   खिल्   खिल्   खिल्

कुसुमों-से चरनों का लोच लिये
थिरक रही हैं
भीनीं   भीनीं
सुगंधियाँ

क्यों न   उसाँसें   भरे
धरती का हिया

धूप की चुस्कियाँ
पिये जाय, आँख मींच, सोनीली माटी

कन्-कन् जिये जाय

थप्-थप् केले के पातों पर हातों से
हाथ्   दिये जाय
थप्   थप्...

वह सलोना जिस्म

शाम का बहता हुआ दरिया कहाँ ठहरा !
साँवली पलकें नशीली नींद में जैसे झुकें
चाँदनी से भरी भारी बदलियाँ हैं,
ख़ाब में गीत पेंग लेते हैं
प्रेम की गुइयाँ झुलाती हैं उन्हें :
—उस तरह का गीत, वैसी, नींद, वैसी शाम-सा है
वह सलोना जिस्म।

उसकी अधखुली अँगड़ाइयाँ हैं
कमल के लिपटे हुए दल
कसे भीनी गंध में बेहोश भौंरे को

वह सुबह की चोट है हर पंखुड़ी पर।

रात की तारों-भरी शबनम
कहाँ डूबी है !

नर्म कलियों के
पर झटकते हैं हवा की ठंड को।

तितलियाँ गोया चमन की फ़िज़ा में नश्तर लगाती हैं।

एक पल है यह समा
जागे हुए उस जिस्म का !

जहाँ शामें डूब कर फिर सुबह बनती हैं
एक-एक,—
और दरिया राग बनते हैं—कमल
फ़ानूस—रातें मोतियों की डाल—
दिन में
साड़ियों के-से नमूने चमन में उड़ते छबीले ; वहाँ
गुनगुनाता भी सजीला जिस्म वह—
जागता भी
मौन सोता भी, न जाने
एक दुनिया को
उमीद-सा,
किस तरह !

आओ !

1

क्यों यह धुकधुकी, डर,—
दर्द की गर्दिश यकायक साँस तूफ़ान में गोया।
छिपी हुई हाय-हाय में
सुकून
की तलाश।

बर्फ़ के गालों में है खोया हुआ
या ठंडे पसीने में ख़ामोश है
शबाब।

तैरती आती है बहार
पाल गिराए हुए
भीने गुलाब—पीले गुलाब
के।

तैरती आती है बहार
ख़ाब के दरिया में
उफ़क़ से
जहाँ मौत के रंगीन पहाड़
हैं।

जाफ़रान
जो हवा में है मिला हुआ
सांस में भी है।

मुँद गयी पलकों में कोई सुबह
जिसे ख़ून के आसार कहेंगे।
——खो दिया है मैंने तुम्हें।

2

कौन उधर है ये जिधर घाट की दीवार...है ?
वह जल में समाती हुई चली गयी है;
लहरों की बूंदों में
करोड़ों किरनों
की जिंदगी
का नाटक सा : वह
मैं तो नहीं हूँ।

फिर क्यों मुझे (अंगों में सिमिट कर अपने)
तुम भूल जाती हो
पल में :
तुम कि हमेशा होगी
मेरे साथ,
तुम भूल न जाओ मुझे इस तरह।

× ×

एक गीत मुझे याद है।
हर रोम के नन्हे-से कली-मुख पर कल
सिहरन की कहानी मैं था;
हर ज़र्रे में चुम्बन के चमक की पहचान।
पी जाता हूँ आँसू की कनी-सा वह पल।

ओ मेरी बहार !
तू मुझको समझती है बहुत-बहुत——तू जब
यूँ ही मुझे बिसरा देती है।

खुश हूँ कि अकेला हूँ,
कोई पास नहीं है—
बजुज़ एक सुराही के,
बजुज़ एक चटाई के,
बजुज़ एक ज़रा-से आकाश के,
जो मेरा पड़ोसी है मेरी छत पर
(बजुज़ उसके, जो तुम होतीं—मगर हो फिर भी
यहीं कहीं अजब तौर से।)

तुम आओ, गर आना है
मेरे दीदों की वीरानी बसाओ;
शे'र में ही तुमको समाना है अगर
ज़िंदगी में आओ, मुजस्सिम...
बहरतौर चली आओ।
यहाँ और नही कोई, कहीं भी,
तुम्हीं होगी, अगर आओ;
तुम्हीं होगी अगर आओ, बहरतौर चली आओ अगर।
(मैं तो हूँ साये में बँधा-सा
दामन में तुम्हारे ही कहीं, एक गिरह-सा
साथ तुम्हारे।)

3

तुम आओ, तो खुद घर मेरा आ जाएगा
इस कोनो-मकाँ[1] में,
तुम जिसकी हया हो,
लय हो।

उस ऐन ख़मोशी की—हया-भरी
इन सिम्तों की पहनाइयाँ[2] मुझको
पहनाओ !
तुम मुझको
इस अंदाज़ से अपनाओ
जिसे दर्द की बेगानारवी[3] कहें,
बादल की हँसी कहें,
जिसे कोयल की
तूफ़ान-भरी सदियों की
चीख़ें,
कि जिसे 'हम-तुम' कहें।

(वह गीत तुम्हें भी तो
याद होगा ?)

1. देश-काल 2. विस्तार 3. बेरुखी।

धूप कोठरी के आइने में खड़ी

धूप कोठरी के आइने में खड़ी
हँस रही है

पारदर्शी धूप के पर्दे
मुसकराते
मौन आँगन में

मोम-सा पीला
बहुत कोमल नभ

एक मधुमक्खी हिलाकर, फूल को
बहुत नन्हा फूल
उड़ गयी

आज बचपन का
उदास माँ का मुख
याद आता है

लौट आ, ओ धार

लौट आ ओ धार

टूट मत ओ साँझ के पत्थर
                    हृदय पर

(मैं समय की एक लम्बी आह
                    मौन लम्बी आह)

लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी
          फिर
     फूल में लग जा

चूमता है धूल का फूल
कोई, हाय ।

न पलटना उधर

न पलटना उधर
कि जिधर ऊषा के जल में
सूर्य का स्तम्भ हिल रहा है
न उधर नहाना प्रिये !

जहाँ इन्द्र और विष्णु एक हो
अभूतपूर्व !—
यूनानी अपोलो के स्वरपंखी कोमल बरबत से
धरती का हिया कँपा रहे हैं
—और भी अभूतपूर्व !—
उधर कान न देना प्रिये
शंख-से अपने सुन्दर कान
जिनकी इन्द्रधनुषी लवें
अधिक दीप्त हैं।

उन सँकरे छन्दों को न अपनाना प्रिये
(अपने वक्ष के अधीर गुन-गुन में)
जो गुलाब की टहनियों-से टेढ़े-मेढ़े हैं
चाहे कितने ही कटे-छँटे लगें, हाँ।

उनमें वो ही बुलबुलें छिपी हुई बसी हुई हैं
जो कई जन्मों तक की नींद से उपराम कर देंगी
प्रिये !

एक ऐसा भी सागर-संगम है
देवापगे !
जिसके बीचोबीच तुम खड़ी हो
ऊर्ध्वस्व धारा
आदि सरस्वती का आदि भाव
उसी में समाओ प्रिये !

मैं वहाँ नहीं हूँ !

टूटी हुई, बिखरी हुई

टूटी हुई बिखरी हुई चाय
की दली हुई पाँव के नीचे
पत्तियाँ
मेरी कविता
बाल, झड़े हुए, मैले से रूखे, गिरे हुए, गर्दन से फिर भी चिपके
...कुछ ऐसी मेरी खाल,
मुझसे अलग-सी, मिट्टी में
मिली-सी

दोपहर बाद की धूप-छाँह में खड़ी इन्तजार की ठेलेगाड़ियाँ
जैसे मेरी पसलियाँ...
ख़ाली बोरे सूजों से रफ़ू किये जा रहे हैं...जो
मेरी आँखों का सूनापन हैं

ठंड भी एक मुसकराहट लिये हुए है
जो कि मेरी दोस्त है।

कबूतरों ने एक ग़ज़ल गुनगुनायी...
मैं समझ न सका, रदीफ़-क़ाफ़िये क्या थे,
इतना ख़फ़ीफ़, इतना हलका, इतना मीठा
उनका दर्द था।

आसमान में गंगा की रेत आईने की तरह हिल रही है।
मैं उसी में कीचड़ की तरह सो रहा हूँ
और चमक रहा हूँ कहीं...
न जाने कहाँ।

मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार—
जिसके स्वर गीले हो गये हैं,
छप्-छप्-छप् मेरा हृदय कर रहा है...
छप् छप् छप्।

वह पैदा हुआ है जो मेरी मृत्यु को सँवारने वाला है।
वह दूकान मैंने खोली है जहाँ 'प्वाइज़न' का लेबुल लिये हुए
दवाइयाँ हँसती हैं—
उनके इंजेक्शन की चिकोटियों में बड़ा प्रेम है।

वह मुझ पर हँस रही है, जो मेरे होठों पर एक तलुए
के बल खड़ी है
मगर उसके बाल मेरी पीठ के नीचे दबे हुए हैं
और मेरी पीठ को समय के बारीक तारों की तरह
खुरच रहे हैं
उसके एक चुम्बन की स्पष्ट परछायीं मुहर बनकर उसके
तलुओं के ठप्पे से मेरे मुँह को कुचल चुकी है
उसका सीना मुझको पीसकर बराबर कर चुका है।

मुझको प्यास के पहाड़ों पर लिटा दो जहाँ मैं
एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ।
मुझको सूरज की किरनों में जलने दो—
ताकि उसकी आँच और लपट में तुम
फ़ौवारे की तरह नाचो।

मुझको जंगली फूलों की तरह ओस से टपकने दो,
नाकि उसकी दबी हुई ख़ुशबू से अपने पलकों की
उनींदी जलन को तुम भिगो सको, मुमकिन है तो।
हाँ, तुम मुझसे बोलो, जैसे मेरे दरवाज़े की शर्माती चूलें
सवाल करती हैं बार-बार...मेरे दिल के
अनगिनती कमरों से।

हाँ, तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं
...जिनमें वह फँसने नहीं आतीं,
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पातीं,
तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।

आईनो, रोशनाई में घुल जाओ और आसमान में
मुझे लिखो और मुझे पढ़ो।
आईनो, मुसकराओ और मुझे मार डालो।
आईनो, मैं तुम्हारी ज़िन्दगी हूँ।

एक फूल ऊषा की खिलखिलाहट पहनकर
रात का गड़ता हुआ काला कम्बल उतारता हुआ
मुझसे लिपट गया।

उसमें काँटे नहीं थे—सिर्फ़ एक बहुत
काली, बहुत लम्बी ज़ुल्फ़ थी जो ज़मीन तक
साया किये हुए थी...जहाँ मेरे पाँव
खो गये थे।

वह गुल मोतियों को चबाता हुआ सितारों को
अपनी कनखियों में बुलाता हुआ, मुझ पर
एक ज़िन्दा इत्रपाश बनकर बरस पड़ा—

और तब मैंने देखा कि सिर्फ़ एक साँस हूँ जो उसको
बूँदों में बस गयी है।
जो तुम्हारे सीनों में फाँस की तरह ख़ाब में
अटकती होगी, बुरी तरह खटकती होगी।

मैं उसके पाँवों पर कोई सिजदा न बन सका,
क्योंकि मेरे झुकते न झुकते
उसके पाँवों की दिशा मेरी आँखों को लेकर
खो गयी थी।

जब तुम मुझे मिले, एक खुला फटा हुआ लिफ़ाफ़ा
तुम्हारे हाथ आया।
बहुत उसे उलटा-पलटा—उसमें कुछ न था—
तुमने उसे फेंक दिया : तभी जाकर मैं नीचे
पड़ा हुआ तुम्हें 'मैं' लगा। तुम उसे
उठाने के लिए झुके भी, पर फिर कुछ सोचकर
मुझे वहीं छोड़ दिया। मैं तुमसे
यों ही मिल लिया था।

मेरी याददाश्त को तुमने गुनाहगार बनाया—और उसका
सूद बहुत बढ़ाकर मुझसे वसूल किया। और तब
मैंने कहा—अगले जनम में। मैं इस
तरह मुसकराया जैसे शाम के पानी में
डूबते पहाड़ ग़मगीन मुसकराते हैं।

मेरी कविता की तुमने ख़ूब दाद दी—मैंने समझा
तुम अपनी ही बातें सुना रहे हो। तुमने मेरी
कवित की ख़ूब दाद दी।

तुमने मुझे जिस रंग में लपेटा, मैं लिपटता गया :
और जब लपेट न खुले—तुमने मुझे जला दिया।
मुझे, जलते हुए को भी तुम देखते रहे : और वह
मुझे अच्छा लगता रहा।

एक ख़ुशबू जो मेरी पलकों में इशारों की तरह
बस गयी है, जैसे तुम्हारे नाम की नन्हीं-सी
स्पेलिंग हो, छोटी-सी प्यारी-सी, तिरछी स्पेलिंग।

आह, तुम्हारे दाँतों से जो दूब के तिनके की नोक
उस पिकनिक में चिपकी रह गयी थी,
आज तक मेरी नींद में गड़ती है।

अगर मुझे किसी से ईर्ष्या होती तो मैं
दूसरा जन्म बार-बार हर घंटे लेता जाता :
पर मैं तो जैसे इसी शरीर से अमर हूँ—
तुम्हारी बरकत !

बहुत-से तीर बहुत-सी नावें, बहुत-से पर इधर
उड़ते हुए आये, घूमते हुए गुज़र गये
मुझको लिये, सबके सब। तुमने समझा
कि उनमें तुम थे। नहीं, नहीं, नहीं।
उनमें कोई न था। सिर्फ़ बीती हुई
अनहोनी और होनी की उदास
रंगीनियाँ थीं। फ़क़त।

गीत

धरो शिर
हृदय पर
वक्ष - वह्नि से, —तुम्हें
मैं सुहाग दूँ—
चिर सुहाग दूँ!
प्रेम - अग्नि से — तुम्हें
मैं सुहाग दूँ!
विकल मुकुल तुम
प्राणमयि,
यौवनमयि,
चिरवसन्त - स्वप्नमयि,
मैं सुहाग दूँ :
विरह - आग से, — तुम्हें
मैं सुहाग दूँ!

एक मुद्रा से
(गीत)

—सुन्दर !
उठाओ
निज वक्ष
और—कस—उभर !

क्यारी
भरी गेंदा की
स्वर्णारक्त
क्यारी भरी गेंदा की :
तन पर
खिली सारी—
अति सुन्दर ! उठाओ० ।

स्वप्न-जड़ित-मुद्रामयि
शिथिल करुण !
हरो मोह-ताप, समुद
स्मर-उर वर :
हरो मोह-ताप—
और और कस उभर !
सुन्दर ! उठाओ० !

अंकित कर विकल हृदय-पंकज के अंकुर पर
चरण-चिह्न,
अंकित कर अंतर आरक्त स्नेह से नव, कर पुष्ट, बढ़ूँ
सत्वर, चिरयौवन वर, सुन्दर !—

उठाओ निज वक्ष : और और कस, उभर !

रुबाई

हम अपने ख़याल को सनम समझे थे,
अपने को ख़याल से भी कम समझे थे !
होना था—समझना न था कुछ भी, शमशेर,
होना भी कहाँ था वह जो हम समझे थे !

ये लहरें घेर लेती हैं

ये लहरें घेर लेती हैं
ये लहरें...

उभर कर अर्द्ध द्वितीया
टूट जाता है...

अन्तरिक्ष में
ठहरा एक

दीर्घ रहेगा समतल —मौन

दूर...उत्तर पूर्व तक

तीन
ब्रह्मांड
टूटे हुए मिले चले गये हैं

अगिन व्यथा भर सहसा
कौन भाव
बिखर गया इन सब पर ?

एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता

एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता
पूरब से पच्छिम को एक क़दम से नापता
बढ़ रहा है

कितनी ऊँची घासें चाँद-तारों को छूने-छूने को हैं
जिनसे घुटनों को निकालता वह बढ़ रहा है
अपनी शाम को सुबह से मिलाता हुआ

फिर क्यों
        दो बादलों के तार
उसे महज़ उलझा रहे हैं ?

चाँद से थोड़ी-सी गप्पें

[एक दस-ग्यारह साल की लड़की]

गोल हैं ख़ूब मगर
आप तिरछे नज़र आते हैं ज़रा।
आप पहने हुए हैं कुल आकाश
तारों-जड़ा ;
सिर्फ़ मुँह खोले हुए हैं अपना
गोरा चिट्टा
गोल मटोल,
अपनी पोशाक को फैलाए हुए चारों सिम्त।
आप कुछ तिरछे नज़र आते हैं जाने कैसे
—ख़ूब हैं गोकि !

वाह जी वाह !
हमको बुद्धू ही निरा समझा है !
हम समझते ही नहीं जैसे कि
आपको बीमारी है :
आप घटते हैं तो घटते ही चले जाते हैं,
और बढ़ते हैं तो बस यानी कि
बढ़ते ही चले जाते हैं—
दम नहीं लेते हैं जब तक बि ल कु ल ही
गोल न हो जायें,

बिलकुल गोल।
यह मरज़ आपका अच्छा ही नहीं होने में
आता है।
यह न होता तो, क़सम से, हम सच्
कहते हैं—
आपसे शादी कर लेते—
फ़ौरन् !...

आप हँसते हैं, मगर
यों भी दिल खींच तो लेते ही हैं आप
(हाँ, जी) समुन्दर की तरह,
औ' मैं बेचैन-सी हो जाती हूँ
उसकी लहरों की तरह;
ज्वार-भाटा-सा अजब, जाने क्यों
उठने लगता है ख़यालों में मेरे
ख़ाहमख़ाह !

जाओ, हटो !
ऐसे इंसान को हम प्यार नहीं करते हैं
मुँह-दिखाई ही फ़क़त
जो मेरा सरबस माँगे,
और फिर हाथ न आये;
मुफ़्त कविताएँ सुने,
अपने दिल को न बताये ;
जब भी आये,
यूँ ही उलझाये !
ऐसे इंसान को हम आख़िर तक
प्यार नहीं करते हैं,
हाँ ! समझ गये ?

कुछ शेर

ख़ामोशिए-दुआ हूँ, मुझे कुछ ख़बर नहीं
जाती हैं क्या सदाएँ तेरे आस्ताँ के पार
सात् आसमान झुकते उठाते हैं किसके नाज़
किसको झलक-सी है चमते-कहकशाँ के पार
इतना उदास आपका दिल किस लिए हुआ
हर दर्द को दवा है ज़मानो-मकाँ के पार

× × ×

बन्दगी इक मुक़ाम था, औ वो मुक़ाम हो चुका
इश्क़ भी नाम था तेरा, औ तेरा नाम हो चुका
आपकी दास्तान थी गोया किसी की ज़िन्दगी
आपके आने-आने तक क़िस्सा तमाम हो चुका
एक ख़याले-ख़ाम हूँ, दिल से मुझे भुलाइये
आपको आ चुका हूँ याद, इश्क़ तमाम हो चुका

× × ×

हो चुकी जब ख़त्म अपनी ज़िन्दगी की दास्ताँ
उनकी फ़रमाइश हुई है, इसको दोबारा कहें

× × ×

अपनी मिट्टी को छिपाएँ आसमानों में कहाँ
उस गली में भी न जब अपना ठिकाना हो सका।

× × ×

इल्मो-हिकमत, दीनो-ईमां, मुल्को-दौलत, हुस्
आपको बाज़ार से जो कहिए ला देत

× × ×

मैं यहाँ तक भूल जाया जा सकूँ
एक आँसू में गिराया जा सकूँ
तुम न ऐसी ख़ाब-सी बातें करो
मैं भला तुमसे निभाया जा सकूँ

× × ×

आप ही कल मेरा सहारा थे
आपको आज और क्या मालूम
आज तू उसके दर पे आ पहुँचा
आज तू अपने दिल का पत्थर चूम

× × ×

मैं कई बार मिट चुका हूँगा
वर्ना इस ज़िन्दगी की इतनी धूम

× × ×

जी को लगती है तेरी बात खरी है शायद
वही शमशेर मुज़फ्फरनगरी है शायद
आज फिर काम से लौटा हूँ बड़ी रात गये
ताक़ पर ही मेरे हिस्से की धरी है शायद
मेरी बातें भी तुझे ख़ाबे-जवानी-सी हैं
तेरी आँखों में अभी नींद भरी है शायद

शमशेरबहादुर सिंह

जन्म : 13 जनवरी 1911, देहरादून, एक जाट परिवार में। पिता का नाम : बाबू तारीफ सिंह, माता का नाम : श्रीमती प्रभुदेई। पिता की मृत्यु :1939 मे, माता की मृत्यु : 1920 में।

विवाह : 1929 में श्रीमती धर्मदेवी से। पत्नी की मृत्यु : 1935 में।

शिक्षा : आरंभिक-देहरादून में; हाई स्कूल (1928) और इंटर (1931) गोंडा (उत्तर प्रदेश) से; बी.ए (1933) इलाहाबाद से; एम.ए. प्रीवियस (1938) इलाहाबाद से ही; किन्हीं कारणों से फाइनल न कर सके। 1935-36 में उकील-बंधुओं से कला विद्यालय में पेंटिंग सीखी।

साहित्यिक कार्य : 'रूपाभ' में कार्यालय सहायक के रूप में—1939; 'कहानी' में त्रिलोचन के साथ—1940; 'नया साहित्य' बंबई में कम्यून में रहते हुए—1946; 'माया' में सहायक सम्पादक 1948-54; 'नया पथ' और 'मनोहर कहानियाँ' में सम्पादन सहयोग।

दिल्ली विश्वविद्यालय में यू.जी.सी. के प्रोजेक्ट 'उर्दू- हिन्दी कोश' में सम्पादक—1965-77। अध्यक्ष प्रेमचन्द सृजन पीठ, विक्रम विश्वविद्यालय-1981-85। यात्रा : सोवियत संघ—1978।

कृतियाँ : 'कुछ कविताएँ', पहला संस्करण, मई 1959, प्रकाशक : जगत शंखधर, डी/53/96 कमच्छा, वाराणसी।

'कुछ और कविताएँ', 1961 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

'चुका भी हूँ नहीं मैं', पहला संस्करण, 1975; दूसरा संस्करण 1981 राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

'इतने पास अपने', 1980, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2।

'उदिता—अभिव्यक्ति का संघर्ष', 1980, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

'बात बोलेगी', 1981, संभावना प्रकाशन, हापुड़ (उत्तर प्रदेश)।

'काल, तुझसे होड़ है मेरी', 1988, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।